भस्माहूत चिन्गारी

समर्पण

असफलता और निराशा की राख पड़-पड़ कर तुम्हारे जीवन की चिंगारियाँ दबी चली जा रही हैं। मैं उन्हें फूंक कर सजग कर देना चाहता हूँ।

· · सम्मिलित जीवन से मुझे मोह है।

विप्लव
२ जूलाई ४६

यशपाल

बात यह है कि—

परिवर्तन के इस युग मे हमारे प्रतिष्ठित साहित्यक और कलाकार सतर्क और चिन्तित है। उन्हें भय है, उत्साह और उत्तेजना से मूढ़ नई पीढी के साहित्यको और कलाकारो के हाथ मे पडकर हमारी परम्परागत कला अपनी शुद्धता, प्रतिभा और प्रयोजन न खो बैठे। नई पीढी के कलाकार कला के सभी रूपो, कविता, कहानी और चित्रकला का उपयोग अपनी सूझ के अनुसार वर्तमान समस्याओ की अभिव्यक्ति और हल के लिये निर्ममता और निरंकुशता से कर रहे है। प्रतिष्ठित कलाकारो की आशका एक सीमा तक युक्तिसगत है। उत्तेजना मूढता और निरंकुशता से सभी वस्तुओ और साधनो का अनियमित प्रयोग भोडा और बेढंगा हो सकता है। प्रश्न यही है कि नई पीढी का कलाकार मूढ और निरकुश है या नही ?

कला मनुष्य के भावो का परिमार्जित रूप है। ऐसा रूप जो कलाकार-व्यक्ति समाज के विचार चिन्तन और उपयोग के लिये समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। स्थान और समय के भेद से जैसे मनुष्य के विचारो को प्रकट करने का मुख्य साधन भाषा पृथक-पृथक होती है वैसे ही स्थान और समय के अन्तर से भावो अथवा कला को प्रकट करने के साधनो या बाहिरी रूप मे अन्तर आजाना आवश्यक है। स्थान और समय का दूसरा नाम है परिस्थितिया। परिस्थितियो से न केवल भाव को प्रकट करने वाले साधनो के रूप मे अन्तर आ

जाता है बल्कि भाव भी दूसरे प्रकार के हो जा सकते है। मनुष्य के भाव या भावना की परिभाषा की जाय तो हम उसे उसकी महत्वाकांक्षा कह सकते है। एक छोटी मछली की महत्वाकांक्षा मगरमच्छ बनने की हो सकती है और चींटी की महत्वाकांक्षा हाथी बनने की होगी—मगरमच्छ बनने की कल्पना शायद चींटी न कर सके।

मनुष्य की परिस्थितियों का प्रभाव न केवल कला की उत्पत्ति और रूप पर ही पड़ता है बल्कि कला के मूल्यांकन पर भी पड़ता है। कला का कौन रूप और कौन सीमा कुरुचि पूर्ण, वासनात्मक और प्रचारात्मक होजाती है यह बात आलोचक और समाज के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है – जैसे सभी मनुष्यों के लिये पथ्य एक ही वस्तु नही हो सकती। जैसे नग्नता के बारे मे हमारा सस्कार और अभ्यास उचित-अनुचित का निश्चय करते है, वैसे ही वासना के सम्बंध में भी। किसी स्थान और समय में मुँह ढांक कर पेट उघाड़ा रखना लज्जाशीलता हो सकता है, दूसरे समय और स्थान में इससे ठीक उल्टे। हमारे चरित्रवान पूर्वजो के सुसंस्कृत साहित्य मे नारी का 'मोहिनी' 'सुमुखी' और 'नितम्बिनी' सम्बोधन करना शालीनता थी आज हमारे हीनचरित्र समाज मे किसी स्त्री को उसके मुखपर 'सुन्दरी' कहना जूतो की मार को निमत्रण देना है। महाकवि कालिदास का नारी की रोमांचित जंघा का वर्णन करना, हर और सती की रतिक्रिया का चित्रण न अश्लील समझा गया न वासनात्मक। परन्तु यदि आज का लेखक नारी के वस्त्रो के भीतर दृष्टि मात्र पहुँचाने का प्रयत्न करता है तो वह नैतिकता का शत्रु समझा जाता है। इस पर हमें सताप यह है कि हम नैतिकता की दृष्टि से अपने पूर्वजो की अपेक्षा बहुत गिरते जा रहे है। सम्भवत, कारण यह है कि वासना को चरितार्थ करने की क्षमता हममे अपने पूर्वजों के समान नही रह गई। मन्दाग्नि के रोगी के समान घी हमारे लिये विष होगया है। सदाचार और

नैतिकता का एक दृष्टिकोण और मानदण्ड हमारे पूर्वजो के सामने भी था और एक हमारे भी है।

इसी प्रकार प्रचार की भी समस्या है। कलाकार के भाव और कल्पना जीवन के अनुभवों की भूमि पर ही खडे हो सकते है। यदि कला मे जीवन की समस्या का आना दोष है तो फिर कला का प्रत्यक्ष रूप है क्या? किसी भी कलाकार की कृति जीवन का एक रूप पाये बिना प्रकट नहीं हो सकती। प्रश्न है:—कला में प्रकट जीवन का रूप किस समस्या का संदेश देता है? भावशून्य, संदेशशून्य, कला को क्या हम कला कह सकते है? यहाँ भी निर्णय का आधार हमारे संस्कार और अभ्यास ही है। जिन भावो और संदेशो को हम परम्परा और अभ्यास से स्वीकार करते आये है कला मे उनका समावेश हमें केवल शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा जान पडता है, प्रचार नहीं। स्वामी की सेवा में सेवक के जान पर खेल जाने का करुण चित्रण हमारी कलात्मक वृत्तियो को गुद-गुदाकर सद्वृत्तियो को जगाने वाला समझा जाता है। वह हमें प्रचार नहीं जान पडता। दुश्चरित्र पति की निन्दा न सुनने के लिये पतिव्रता के कान मूंद लेने की कहानी हमें केवल आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही जान पडती है, प्रचार नही परन्तु जब आज का कलाकार अन्नदाता स्वामी के लिये सेवक के प्राणत्याग की भावना का विद्रूप कर उसकी उपमा कुत्ते से देता है जो न्याय और तर्क सब कुछ भूल केवल स्वामिभक्ति को ही धर्म समझता है तो यह प्रचार जान पड़ता है। इसी प्रकार जब आजका कहानी लेखक मध्यम श्रेणी की एक सम्मानित महिला और वेश्या में यही अन्तर देखता है कि सम्मानित महिला का पालन केवल एक व्यक्ति करता है और वेश्या का पालन अनेक व्यक्ति करते हैं, तब आजके लेखक पर घोर अनाचार के प्रचार का दोष लगाया जाता है।

हमारे पूर्वज साहित्यक की दृष्टि में वश उत्पत्ति के स्रोत नारी की

शुद्धता सबसे अधिक महत्व की वस्तु थी। वह दृष्टिकोण और प्रयोजन नैतिक था यह हम स्वीकार करते है परन्तु आज के लेखक का भी एक प्रयोजन हो सकता है.—वह चाहता है हमारे समाज का आधा भाग नारी समाज भी आज के कठिन संघर्ष में अपने आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दायित्व को समझे केवल पुरुष के कंधों पर बोझ ही न बना रहे।

कला और साहित्य का उद्देश्य सभी अवस्थाओ मे मनुष्य मे नैतिकता और कर्तव्य की प्रवृत्तियों की चिंगारियों को भावना की फ़ूंक मारकर सुलगाना ही रहता है। अन्तर रहता है, हमारे विश्वास और दृष्टिकोण में। कभी हम समझते है इन चिगारियो से निकली ज्वाला प्रकाश कर मार्ग दिखायेगी ; कभी हम समझते है, यह ज्वाला हमारे समाज की रक्षा करनेवाले छप्पर को फूंक कर राख कर देगी।

विप्लव
२ जुलाई ४६

यशपाल

भस्माछृत्त चिन्गारी

वह मेरे पडोस मे रहता था। उसके प्रति मुझे एक प्रकार की श्रद्धा थी। उसका व्यवहार एक रहस्य के कोहरे से घिरा था। रहस्य बनावट का नही जो आशकित कर देता है, सरलता का रहस्य, जो आकर्षण और सहानुभूति पैदा करता है। वह साधारण से भिन्न था, शायद कुछ ऊँचा।

उसके बडे और छोटे भाइयों ने अपने श्रम से पिता की कमाई सम्पत्ति की बुनियाद पर स्वतन्त्र कारोबार की इमारते सफलता-पूर्वक खडी कर ली। वे सफल गृहस्थ और सम्मानित नागरिक बन गये। वे पुराने परिवार-वृक्ष की कलमो के रूप मे नयी भूमि पा, नये परिवार की लहलहाती शाखा के रूप मे कल्ला उठे। पिता को अपने दोनों पुत्रो की सफलता पर गर्व और संतोष था।

और 'वह' सब सुविधा और अवसर होने पर और अपने शैथिल्य के कारण पिता की अधिक करुणा पाकर भी कुछ न बन सका। उसने यत्न ही नही किया। उसके पिता को इससे उदासी और निरुत्साह हुआ; परन्तु मै उसका आदर करता था। उसमें लोभ न था। वह सन्तोष की मूर्ति था। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा उसमे न थी। वह त्यागी था। यही तो तपस्या है।

पिता की मृत्यु के बाद दोनो कर्मठ व्यापारी भाइयो ने हज़ारों की आमदनी होते हुए भी जब उत्तराधिकार की सम्पत्ति के बटवारे में पाई-पाई का हिसाब कर, उसे केवल दो पुराने मकान देकर ही निबटा दिया,

उसने कोई चिन्ता या व्यग्रता प्रकट न की। भाइयों की अपने से दस-बीस गुना अधिक आमदनी के प्रति उसे कभी ईर्षा करते नहीं देखा। घर में अर्थ-संकट अनुभव कर भी उसे कभी विचलित होते नहीं देखा। उसकी शान्ति और सौन्दर्य की वृत्ति सभी जगह शान्ति और सौंदर्य पा सकती थी। इनका स्रोत उसके भीतर था। वह अन्तर्मुख और आत्मरत था। कला के लिए उसका जीवन था और कला ही उसका प्राण थी। कला से किसी प्रकार की स्वार्थ-साधना उसे कला का अपमान जान पड़ता।

परिचय उसका अधिक विस्तृत न था। परिचय से उसे घबड़ाहट होती थी। उसके चित्रों से प्रभावित होकर मैंने स्वयं उससे परिचय किया। वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया, और आन्तरिकता भी बढ़ गई। कभी वह सन्ध्या, दोपहर या बिल्कुल तड़के ही आ बैठता। समय कोई निश्चित न था। कभी अकेले ही शहर से चार-पाँच मील दूर जा बैठा रहता। उसका सब समय प्रायः किमिचमढी टिकटी के आस-पास रंग-घुली प्यालियों और कूँचियों के चक्कर में बीत जाता।

वह बहुत कम बोलता। जब बोलता उसमें बहुत-सी विचित्र बातें रहती थी। सहमत हुए बिना भी उनकी क़द्र करनी पड़ती थी। क्योंकि वह एक असाधारण व्यक्ति की बात थी। सूखकर ऐंठ गये पत्तों और सूर्य की किरणों में मकड़ी के जाले पर झलमलाती ओस की बूँदो में उसे जाने क्या-क्या दीखता? वह उनमें खो जाता।

एक दिन मई महीने की ठीक दोपहर में मोटर में छावनी से लौट रहा था। सूर्य की किरणो से वाष्प बन रही धूल में, बियाबान सड़क पर उसे अकेले शहर की ओर लौटते देखा। उसके समीप गाड़ी रोक पुकारा—'इस समय कहाँ?'

'ऐसे ही जरा घूमने निकला था'—उत्तर मिला।

विस्मयाहत हो पूछा—'इस धूप में ?'—कार का दरवाजा उसके लिए खोल आग्रह किया—'आओ!'

'नहीं तुम चलो !'—अपनी धोती का छोर थामे, मेरे विस्मय की ओर ध्यान दिये विना उसने उत्तर दिया।

एक तरह से जबरन ही उसे गाडी में बैठा लिया। मजबूरी की हालत से मेरे समीप कुछ क्षण चुपचाप बैठ उसने धीमे से कहा—"देखो कितना सुन्दर है जैसे पालिश की हुई चाँदी फैल गई हो! जैसे जैसे बरफ पड जाने के बाद उसका गुण बदल गया हो White heat (श्वेत उत्ताप) और देखो, तरल गरमी की लहरें कैसे पृथ्वी से आकाश की ओर उठ रही है; जैसे गरमी के तारो से धुनी जाकर पृथ्वी आकाश की ओर उडी जा रही है। मेरी ओर दृष्टि कर उसने कहा—'जरा यह काला चश्मा उतारकर देखो !"

मजबूरन चश्मा उतारना पडा। आँखो में जैसे तीर-से चुभ गये। और फिर जो उसने कहा था ठीक भी जँचने लगा। सोचा, कितना असाधारण है यह व्यक्ति ? यह शायद संसार के लिए एक विभूति है।

ऐसे ही दूसरे एक दिन शरत् ऋतु की संध्या के समय बडे पार्क के किनारे वृक्षों के नीचे से, सूखी घास पर गिरे सूखे, कुडमुडाये पत्तो को रौंदते धोती का छोर थामे, अपना फटा पम्पशू रगडते उसे उतावली मे चले जाते देखा।

पुकारा। उसने सुना नहीं।

अगले दिन उसके यहाँ जाकर देखा, किर्मिच-मढी टिकटी के सामने खडा वह तन्मय कूची से रँग लगा रहा है। बहुत ही सुन्दर चित्र था—हाल मे अस्त हुए सूर्य की गहरी, सिन्दूरी आभा आकाश में अर्धवृत्ताकार फैल रही थी। उस पृष्ठ-भूमि पर आकाश की ओर उठी हुई उँगली की तरह एक सूखे पेड की टहनी पर श्याम चिरैया का जोडा प्रणयाकुल हो रहा था।

विस्मय-मुग्ध नेत्रों से कुछ देर चित्र को देख उससे पूछा—'कल तुम पार्क के समीप से आ रहे थे, पुकारा तो तुमने सुना ही नही ।'

प्रश्नात्मक दृष्टि से उसने मेरी ओर देख, कुछ सोचकर उत्तर दिया—'कल पार्क मे चिडिया के जोडे को देखा—इस प्रकार और वह तुरन्त ही उड गया । सोचा इस चीज़ को यदि स्थायी रूप दे सकूँ ।'

× × ×

उसके अनेक चित्रों 'निर्वासन', 'गौरीशंकर', 'गंगा और सागर' ने प्रसिद्धि नहीं पाई परन्तु विश्वास से कह सकता हूँ, जिस दिन पारखी आँखे उन्हें देख पायेंगी, संसार चकित रह जायगा । मुझे गर्व था ऐसे प्रतिभाशाली कलाकार की मैत्री का ।

मेरा विचार था, वह सांसारिकता से तटस्थ है ; भावुकता के साम्राज्य में ही वह रहता है । परन्तु एक दिन हम उसी के मकान पर बैठे थे । वह न जाने किस विचार में खो गया । उस चुप से उकताकर भी विघ्न न डाला । सोचा, न जाने किस अमूल्य कृत्ति के अंकुर इसके मस्तिष्क में जन्म पा रहे हों ?

समीप के ज़ीने पर उसकी साढे तीन बरस की लडकी खेल रही थी । वह अलापने लगी—'पापा पापा पापा !' मानों नींद से जगाकर उसने कहा—'How sweet कितना मधुर ?' समझा कलाकार भी मनुष्य होता है ।

लक्ष्मी के लिए विद्वानों ने चपला शब्द ठीक ही प्रयोग किया है । वह स्थिर नही रहती । कलाकार के एक मकान मे भूतों ने डेरा डाल दिया और उसका किराये पर उठना कठिन हो गया । उसकी आमदनी कम होती गई । अच्छे-भले मध्यम श्रेणी के खाते-पीते आदमी से उसकी हालत खस्ता हो गई । परन्तु उस ओर उसका ध्यान न गया । उपाय सुझाने और स्वयं उपाय कर देने के लिए तैयार होने पर भी

उसने इस बात को महत्व न दिया। उसे इससे कोई मतलब न था। त्याग और तपस्या क्या दूसरी चीज़ होती है ?

दूसरे बालक के प्रसव से पहले उसकी स्त्री बीमार हो गई। वह बीमारी असाधारण थी। खर्च भी असाधारण था। दो महीने में साढे-तीन हज़ार रुपया ख़र्च हो गया। एक मकान पहले से गिरवी था, दूसरा भी गया।' कोई शिकायत उसे न थी। केवल इतना उसने कहा—'यदि रुपये से मनुष्य के प्राण बच सकते है तो वह किसी भी मूल्य पर महंगा नही। किसी तरह स्त्री के प्राण बचे।

इस दारुण संकट के बाद कलाकार की अवस्था और भी शोचनीय हो गई, परन्तु उसकी तटस्थता मे किसी प्रकार का परिवर्तन न आया। फटी चप्पल में भी वह इतना ही सन्तुष्ट था जितना ग्लेसकिड के पम्पशू पहने रहने पर।

अनेक दिन तक वह दिखाई न दिया। सुना एक चित्र में व्यस्त है। विघ्न न डालने के विचार से उसके घर भी न गया। मालूम होने पर कि नया चित्र पूरा हो गया, देखने गया।

चित्र का नाम था—'जन्म-मरण।' चित्र में प्रसूतिगृह का दृश्य था और शैय्या पर स्वयं उसकी स्त्री। रोगिणी के शीर्ण, चरम पीडा से व्यथित मुख पर मृत्यु का आतंक। उसकी आँखें नवजात शिशु की ओर लगी थी जो उसकी पीड़ा और यन्त्रणा के मेघ से नक्षत्र की भांति अभी ही प्रकट हुआ था। प्रसूता के नेत्र प्रभात के आकाश की भाँति कुहासे से धुन्दले थे और उसकी पुतलियाँ बुझते हुये तारो की भाँति निस्तेज हो रही थी। उस दिन इस चित्र को देख चुप रह गया। कुछ कह सकना भी सम्भव न था। परन्तु अनेक दिन तक इस चित्र की स्मृति मस्तिष्क से न उतरी।

× × ×

समाचारपत्रो में पढा, बम्बई में अखिल भारतीय चित्र-प्रदर्शनी होने

जा रही है। कलाकार के सम्मुख उसके चित्र प्रदर्शनी में भेजने का प्रस्ताव किया। उसे उत्साह न था। उसका विश्वास था, स्वयं कला की पूर्णता मे ही कला की साधना का फल है।

तर्क अनेक हो सकते हैं। समझाया—कलाकार कि प्रतिभा यदि केवल उसके निजी सन्तोष के लिए ही सीमित न रहकर दूसरो के सन्तोष का भी कारण बन सके ?

बहुत अनुरोध कर उन चित्रों को अपने ख़र्च पर बम्बई भिजवाया। प्राय: पन्द्रह दिन बाद प्रदर्शनी के संयोजकों का तार मिला–'यूरोप का कोई व्यापारी 'जन्म-मरण' चित्र के लिए पाँच हज़ार रुपया कीमत देने के लिए तैयार है।'

चित्र मेरी ओर से भेजे गये थे। इसलिए तार भी मेरे ही नाम आया। कलाकार की प्रकृति जानने के कारण यह प्रस्ताव उसके सम्मुख रखने में बहुत संकोच हो रहा था परन्तु यह भी विचार था कि यदि इस चित्र के मूल्य से एक दुखी परिवार का क्लेश दूर हो सकता है तो यह कला का अपमान नहीं। यह भी सोचा—जो व्यक्ति अपनी कमाई का पाँच हज़ार रुपया चित्र में अङ्कित कला और भावना के लिए न्योछावर कर रहा है, वह कलाकार की प्रतिभा और भावना दोनों का ही सत्कार कर रहा है। बहुत बचाकर अत्यन्त संकोच से वह प्रस्ताव उसके सामने रखा। परिणाम वही हुआ जिसकी आशा थी।

तार से सौदा नामंजूर होने की सूचना दे दी। उत्तर आया, ग्राहक दस हज़ार देने को तैयार है। इस बार और भी अधिक संकोच से कलाकार को सूचना दी। उसने उत्तर दिया–मै नहीं चाहता था उन चित्रों को प्रदर्शनी में भेजा जाय। न मैं अपनी भावना का कोई मूल्य स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। तुम उन चित्रो को वापिस मँगवा लो।'

क्रियात्मक क्षेत्र में इसे अव्यावहारिक समझकर भी कलाकार की त्याग-भावना और नि:स्वार्थ कला-साधना के प्रति मेरे मन मे आदर का

भाव बढ गया। कलाकार की निष्ठा के प्रत्यक्ष उदाहरण से स्वीकार करना पडा, कला जीवन से भी ऊँची वस्तु है। बेशक साधारण जन की पहुँच वहाँ तक नही, परन्तु उस कला का अस्तित्व है अवश्य। सांसारिक स्थूलता मे लिप्त रहकर हम उस कला के अतीन्द्रिय, सूक्ष्म सन्तोष को पा नही सकते। यह न्यूनता कला की नहीं, हमारी अपनी अयोग्यता है। वह कला उसी प्रकार अनादि, अनन्त है जैसे आत्मा और अपौरुषेय शक्ति का अस्तित्व। आप्त पुरुषो के अनुभव से ही साधारण पुरुष उसे समझ सकते है। कलाकार का सन्तोष इसका अकाट्य प्रमाण था। उस कला की अर्चना मे कलाकार के परिवार का बलिदान इस सत्य का प्रमाण था कि कला से प्राप्त सन्तोप जीवन-रक्षा की भावना से भी अधिक प्रबल और महान है।

मै स्वयम कला की वेदी से दूर हूँ। सांसारिकता की अडचनो से छनकर आये कला के प्रकाश की सूक्ष्म किरणो को ही मै पा सका हूँ। मैं कला की आराधना उसके पुजारी के प्रति अपनी श्रद्धा और आदर से ही कर सकता था, जैसे यजमान पुरोहित द्वारा यज्ञ कार्य का पुण्य प्राप्त करता है। मेरी उस श्रद्धा का स्थूल रूप था, कला, के पुरोहित कलाकार की सेवा के लिए तत्परता।

× × ×

कलाकार की स्त्री शनै. शनै बलि होते होते एक दिन नवजात शिशु को छोड चल बसी। कलाकार शोक के आघात से कुछ दिन संज्ञाहीन रहा। उसके पुत्र को स्त्री के भाई ले गये। संज्ञा लौटने पर कलाकार के होठो पर एक मुस्कराहट आ गई। उसने एक और चित्र बनाया—एक प्रकाण्ड हिमस्तूप की दुरारोह चढाई पर एक क्षीण शरीर तपस्वी चढ रहा है। उसको जीवन संगिनी चढ़ाई मे क्लान्त और जर्जर हो गिर पडी है। तपस्वी यात्री दुविधा मे है। वह घूमकर अपनी बरफ़ पर गिर पडी निष्प्राण सगिनी की ओर देखता है। दूसरी ओर हिमस्तूप

का शिखिर सप्राण-सा हो उसे अपनी ओर आह्वान कर रहा है ।

इस चित्र की भाव-गरिमा से मैं अवाक् रह गया। चित्र क्या था, कलाकार की कूँची से उसके जीवन की कहानी और उसके त्याग की महत्त्वाकांक्षा, कला के प्रति उसका सगर्व आत्म-समर्पण। मैं अभिभूत रह गया ; उस महान् उद्देश्य से परे लघु जीवन की बात क्या ?

फिर भी शंकालु मस्तिष्क में प्रश्न उठही आता—कला की शक्ति जीवन में किस प्रकार चरितार्थ हो ? कलाकार ने अपना उत्तर रेखा के स्वरों में लिख चित्रपट स्थिर कर दिया था। प्रश्न करने पर उसने कहा—'अँधेरे आँगन में एक दीपक जलता है। उस दीपक का आलोक बहुत दूर से भी दिखाई पडता है और समीप से भी। दीपक की लौ के समीप आते जाने से प्रकाश को उज्ज्वलता मिलती है और दृष्टि को सुस्पष्टता। परन्तु यह दीपक को प्राप्त कर लेना नहीं है। प्रकाश के इस केन्द्र में है केवल अग्नि। जो तेल और बत्ती को जलाती है।

दीपक की लौ प्रकाश की ओर देखनेवाले पथिकों की चिन्ता नहीं करती और दीपक जलता रहने के लिए तेल और बत्ती का जलते रहना आवश्यक है।

कलाकार का शरीर दारिद्र्य और अवसाद से क्षीण होता गया। परन्तु उसके नेत्रों की प्रखरता बढ़ती गई। वह अपनी साधना में रत था। जितना ही गहरा मूल्य वह अपनी इस आराधना के लिए अदा कर रहा था, उसी अनुपात में उसकी निष्ठा बढ़ती जा रही थी।

× × ×

बहुत सुबह उठने का अभ्यास मुझे नहीं है, विशेषकर माघ की सर्दी में। परन्तु पिछले दिन थकावट अधिक हो जाने के कारण समय से एक घंटे पूर्व सो गया था, इसलिए उठा भी कुछ पहले। समय होने से बरामदे में खड़ा सामने फुववाड़ी की ओर देख रहा था, माली कुछ करता भी है या नहीं।

सुबह,सुबह गरम कपडे पहने, हिरन के खुर जैसे छोटे-छोटे जूतों से-खुट -खुट करते बच्चों ने आकर उँगली थाम ली—'पापा, अम छैर कले जा रए है। पापा भैया भी गाडी मे जारा है। राधा भी जा रई है। पापा, तुम तुम भी चलो !'

श्रीमतीजी शाल मे लिपटी बैठी रहती है परन्तु बच्चों को सुबह ही गरम कपडे पहना, आया राधा के साथ सूर्य की प्रथम किरणो के सेवन के लिए सडक पर भेज देती है। कारण, हमारा क्या है; परन्तु बच्चों का स्वास्थ्य ही तो सब कुछ है।

बच्ची उँगली से खींचे लिये जा रही थी, जैसे ऊँट की नकेल थामे उसका सवार आगे-आगे चला जा रहा हो। चेस्टर में सर्दी से सिकुडता हुआ बेटी की आज्ञा के अनुगत चला जा रहा था। वह मुझे सडक तक ले आई और छोडना न चाहती थी। रात की पोशाक के धारीदार पायजामे से यों आगे जाना उचित न था। बच्ची को बहलाने के लिए इधर-उधर देख रहा था।

हमारे बँगले से लगी बाँई ओर की ज़मीन खाँ साहब ने ली थी। वह दस बरस से यो ही पडी है। चार-दीवारी तक नही खींची गई। अपने बँगले की चार-दीवारी की पुश्त पर दृष्टि पडी।

देखा—सूर्य की प्रथम किरण मे, दीवार के साथ उग आये ओस से भीगे झाड-झंखाड में, एक फटी दरी के तिहाई टुकडे पर मनुष्य शरीर का काला ढाँचा मात्र पडा है,समीप टीन का एक डिब्बा और रोटी का ऐंठा हुआ टुकडा। सूती कम्बल का एक टुकडा भी जो शरीर से नीचे खिसक आया था। इस सर्दी में वस्त्र सँभालने की सुध उस शरीर में न थी।

क्षण भर मे उसका पूर्व इतिहास कल्पना में कौंध गया—कोई भिखमंगा रात बिता रहा होगा, जाडे में ऐंठ गया। शरीर निश्चेष्ट था। शायद मर गया ?

बच्चों को तुरंत उस दृश्य से हटाने के लिये राधा के साथ आगे

भेज दिया। समीप जाकर देखा। हाथ से स्पर्श करने में आशंका हुई; शायद कोई छूत की बीमारी हो ? परंतु 'था तो वह भी मनुष्य ही। छूकर देखा—बहुत क्षीण ऊँ-ऊँ स्वर ! कराहट सी सुनाई दी अभी प्राण थे।

मनुष्य के प्रति करुणा और भय से मन विचलित हो गया। तुरन्त लौट हेल्थ-आफ़िसर अरोडा साहब को फ़ोन किया। म्युनिसिपैलिटी की एम्बुलेन्स आ गई। अपनी गाडी में हस्पताल साथ गया। इधर-उधर कह-सुनकर उसे भरती करवा दिया। दो घंटे बाद वह हस्पताल के गद्देदार पलंग पर लेटा था। गरम पानी की बोतलें उसके पाँव और बगल में रख दी गईं। टोंटीदार प्याले से उसके मुँह में ब्राण्डी मिला दूध दिया जा रहा था।

लौटा तो दोपहर हो रही थी। अपने काम का हर्ज हुआ अवश्य परन्तु संतोष था। बँगले के भीतर गाडी घुमाने से पहले, बँगले के बाँई ओर की खुली ज़मीन के सामने कलाकार को परेशानी की-सी हालत में भटकी नज़रों से कुछ खोजते देखा।

समीप जा पुकारा—'अरे भाई, तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?'

आज सुबह अचानक दृष्टि पड़ गई। कुल घण्टे भर का मेहमान था। अब भी बच जाय, तो बड़ी बात जानो······ ओफ़ मनुष्य का भी क्या है ?········

उसी भटकी मुद्रा में कलाकार ने पूछा—'कहाँ गया वह ?'

'अरे भाई हस्पताल पहुँचा कर आ रहा हूँ—'बडी मुश्किल से डाक्टर को मनाकर भरती कराया ·· समझो लिहाज़ था !'

वह जैसे प्रबल निराशा से हताश लौट पडा। अनेक बार बुलाने पर भी उसने सुना नहीं। बहुत दूर तक पैदल पीछे गया। उसने पलट कर देखा नहीं। बेबसी में लौट आया।

सन्ध्या समय एक जगह जाना ज़रूरी था परन्तु कम्पनी की डाक भी जरूरी थी। शीघ्रता से काग़ज़ देख दस्तख़त करता जा रहा था कि

कलाकार चौखटे मे मढ़ी किरमिच लिये कमरे में आ घुसा।

किर्मिच को मेरी ही मेज़ पर रख क्षोभ-भरे स्वर मे उसने कहा—'दो दिन से इसे बना रहा था। तुमने बेडा गर्क कर दिया अब तुम्हीं इसे सँभालो !' वह लौट गया।

किर्मिच पर अधबने चित्र में सुबह का वह दृश्य जाग उठा था—'वही मृतप्राय भिखमंगा। काले चमडे से मढ़ा उसका पंजर कला के जादू से अधिक सजीव हो उठा था। फटी दरी के टुकडे पर एडियाँ रगडता हुआ ! उसके हाथ, खुले होंठ, और हताश आँखे गुहार मे आकाश की ओर उठी हुई ! चित्र अभी अपूर्ण था परन्तु उसकी उग्र वीभत्सता अत्यन्त सजीव थी।

पेन्सिल की घसीट में चित्र पर उसका शीर्षक लिखा था—'भस्मावृत चिनगारी।'

वह दो दिन से यह चित्र बना रहा था। दो दिन से वह म्रियमाण नर-कंकाल मृत्यु की यातना सह रहा था कि कला, मृत्यु की भस्म से आच्छादित हो जीवन की चिनगारी बुझने का दृश्य अपनी सम्पूर्ण दारुण वीभत्सता के सौन्दर्य सहित प्रस्तुत कर सके।

उस नर-कंकाल को उसकी ठण्डी चिता से हस्पताल के पलंग पर हटाकर मैने कला की पूर्ति मे व्याघात डाल दिया। मेरा यह अनाचार कलाकार के लिए असह्य था।

चित्र मे मृत्यु की यातना से गुहार के लिए उठे नर-कंकाल के हाथों मे कला मेरे अनाचार के प्रति दुहाई दे रही थी । कला की आत्मा मेरी भर्त्सना कर रही थी और मैं उसके सम्मुख अपराधी।

दुर्भाग्य यह कि पश्चात्ताप का साहस भी नहीं।

वह चित्र, मानवता का वह चित्र अब भी वैसा ही है। कलाकार क्षुब्ध है। कला अपूर्ण है शायद पूर्णता की प्रतीक्षा मे।

२

गुलाम की वीरता

सबसे दुखी परबस। इसलिये कि उसे अपना दुख दूर करने का अवसर नहीं रहता। उसकी सामर्थ्य, चेतना और सूझ दुख दूर करने के प्रयत्न में नहीं, दुख अनुभव करने और सहने में ही व्यय होती है।

कहने को तो बस गरमी थी—वर्षा न होने से असाधारण गरमी! आसाढ भर तपता ही रहा। बादल घिर आते परन्तु बरसते नही। केवल हवा रुक कर घुटसा जाता। इस पर जेल ' दीवारो और पेडों की चोटियो पर सूर्य की किरणे रहते बारिक से बन्द हो जाना पडता।

गरमी, गरमी में बेबसी, परवशता। कैदी उन्मुक्त श्वास और शरीर पर वायु का स्पर्श पाने के लिये बारिक के जंगलों के पास आ घिरते। गरमी से जेल के कुओं में पानी कम पड गया। शरीर का पसीना शरीर पर सूख कैदियो की त्वचा कडी और झामे की तरह खुरदरी हो गई। खिजलाहट से कैदियों के नाखून अपनी ही खाल खोंच डालते।

बारिक के दस जगलो के सामने बहत्तर कैदियो के लेटने के लिये स्थान न था। कभी सख्त मिजाज कानूनी जमादार रौटकी ड्यूटी पर होते तो कैदियों को जंगले के समीप बैठने या उसे छू लेने का भी अवसर न रहता। उन्हें कैदियों के व्यवहार मे जंगला काटने की नीयत दिखाई देने लगती। कैदी ओटे (मिट्टी का आधा हाथ ऊँचा चौतरा) पर लेटे अगोछे या हिस्ट्री टिकट से बदन पर हवा करते रहते और

अवर्षा से जेल की गरमी में बेबसी और सरपर फसल की बरबादी का चर्चा करते रहते। जेल मे तौल से पूरी नौ छटाँक रोटी मिल जाने पर भी कैदियों की आँखो मे अवर्षा से दुर्भिक्ष का त्रास छा रहा था। अनेक दिन वर्षा होने न होने के सम्बन्ध में शर्तें लगती रही। अनेक कैदियों ने अपने नाश्ते के चने, अपनी रोटी, नोरी और विशेष यत्न से मंगाया बीडी-तम्बाकू हार दिया परन्तु दैव न पिघला।

सावन की तीजका दिन था। बारिक बन्द हो चुकी थी। आकाश मे घने बादल छाये थे। पर संध्या का अन्धेरा होने मे बहुत देर थी। आँधी आगई। ऐसी आँधी आसाढ मे कितनी ही बेर आ चुकी थी। आँधी से वर्षा की आशा होती थी परन्तु अनेक बेर निराश होजाने पर कैदियो ने आँधी में वर्षा का सन्देश न समझा। कुछ देर पहले बारिक के जंगलो से शान्ति का श्वास मिल रहा था अब वहा से धूल के बादल आने लगे। जेल की बारिक की यह विशेषता है कि गर्मी मे वह अस्तबल की तरह घुटी रहती है और आँधी-पानी मे पिजरे की तरह खुली। जगलों से धूल और छितरे खपरैलो की संधियों से धूल और नीमके सूखे पत्ते गिर-गिर नाक, आँखों और दाँतो में धूल ही धूल भर गई। कैदियो ने ओटों पर शरण ली किसी ने कम्बल से, किसी ने अंगोछे से नाक मुँह ढंका। आँधी को सम्बोधन कर गालियाँ सुनाई देने लगी। जिन जंगलो के समीप स्थान के लिये लडाई मे लोहे के तसलो से बीसियो केदियो के सिर फूट चुके थे, अब खाली पडे थे।

छत की खपरैलो पर आहट सुनाई दी। निराश हृदयो ने उसे पहले आँधी से उडकर आये कंकरो और निबौरियो की बौछार मात्र समझा। परन्तु वे बूंदें थी! बूंदे-बूंदें मेह-मेंह! बारिश! सब ओर शोर मच गया। कैदी बारिक के जंगलो की ओर लपक पडे। जैसे चिडिया घर मे जंगले से चना डाला जाने पर सभी बन्दर इकट्ठे हो जाते है।

राजनैतिक कैदी होने की गरिमा से अपने टाट फट्टे पर लेटा रहा।

बारिश हुई और ज़ोर की बारिश हुई। पहले प्यासी धरती ने जल पाकर गरम उसासें लीं और वह जल पी गई। परन्तु कुछ ही क्षण में जलकी पतली चौडी धारें बह निकलीं और अहाता ताल की भाँति भर गया। अब भी भारी बूदों से वर्षा जारी थी। जल की बूँदों की चोट से जल की सतह पर लाखों चकरियाँ नाच रही थीं।

वर्षा का कौतुहल शान्त हो जाने पर जङ्गले फिर खाली हो गये। खपरैल की झीनी छत खूब टपक रही थी। रौदकी ड्यूटी के जमादार नरम तबीयत के थे। इस लिये कैदियों को टपकन के नीचे अपने ओटों पर ही बैठे या लेटे रहने पर जोर नही दिया। बस इतना खयाल था कि जेलर या बड़े साहब की रौदकी खट मिलने पर सब कैदी अपने अपने ओटों पर चुपके से लेट जाँय। कैदी टपकन से बच टोलियाँ बना जगह-जगह बैठे थे। हथेली पर सुरती मलकर झाडने से फट-फट आहट हो रही थी।

कादिर निधडक बीडी पी रहा था। लोचन शहर की सही उर्दू में कह रहा था—'खाँ साहब, ऐसे में तो हम संतरे (शराब) की पूरी बोतल लेते थे।'

रामजनवाने संशोधन किया—'लौण्डे हो न अभी बाबू, जो मजा गाँव में घरपर खिंची (शराब) मे है उसे तुम क्या जानो?

विसरामने सहयोग दिया—'हाँ चौधरी चौपार में हो, महुआ की, ' क्या कहने ?' उसने होंठ चूसने का शब्द किया।

मुलुआने अपना मत प्रकट किया—'अरे भइय्या, नसा सुलफेका और सब हेच! नसेका राजा सुलफा।'

पढा लिखा राजनैतिक कैदी होने के कारण पढने के लिये हरिकेन लालटैन की सुविधा मिली थी। साधारण कैदियो की अनाचारपूर्ण उच्छृङ्खलता के प्रति विरक्ति दिखा, लालटेन ले एक ओर फट्टे पर लेट, कम्बल का तकिया बना अंग्रेज़ी के एक चित्रमय-साप्ताहिक में मन लगाने

का यत्न कर रहा था। पत्र की अपेक्षा कैदियों की कामनाओं और अनुभूतियों का नग्न चित्रण अधिक आकर्षक हो रहा था परन्तु उसमे रस लेना सम्मानित राजनैतिक व्यक्ति के लिये उचित न था। दृष्टि पत्र पर लगी थी पर कान स्वतंत्र थे।

जहाँ भी चार आदमी आ जुटे छोटे बडे का भाव बन जाता है। कैदियो को जेल की चार दिवारी मे मूँदकर एक जाति के पशुओ की भाँति बराबरी का व्यवहार कडाई से बरता जाता है। सभी का कुर्ता, जाँघिया, कम्बल, फट्टा, तसला-कटोरी और हिस्ट्री टिकट एकसा। परन्तु छोटे बडे का भेद वहाँ भी फूट ही आता है। सभी कैदी, अग्रेज़ी बाजा बजाने वालो के सामने स्वरों में नकशेका कागज़ सम्भाले टिकटी की भाँति, हिस्ट्री टिकट ले एक लाइन में खडे होते है। साहब उन्हें गिने हुये नागों की भाँति सरकारी दृष्टि से देखता है। इस समानता मे भी संस्कार और सम्पति के सम्बन्ध से तुरन्त ऊंच-नीच हो जाता है। जैसे भुने चनो की झोली को झटकने से फूले-फूले ऊपर आजाते है। योंभी लुटिया चोट्टे के सन्मुख डाकू अभिमान करता है और चोर के सन्मुख फौजदारी और कत्ल में सजा पाया अपने चरित्र पर गर्व करता है। पढ़ा लिखा राजनैतिक कैदी सरकार का शत्रु होने के नाते सरकार के प्रतिनिधि जेलर और बडे साहब का प्रतिद्वन्दी बन उन्हीं के समान सम्मान का अधिकारी हो जाता है। बडे साहब के प्रति कैदी का सम्मान विवशता से और राजनैतिक कैदी के प्रति आदर और गरिमा की भावना से होता है। राजनैतिक कैदी के पास इस बडप्पन की रक्षा का कुछ भी वाह्य साधन न रहने से केवल व्यवहार और भावना से उसकी रक्षा करना कुछ आसान नहीं। उसके लिये कितना संयम आवश्यक होता है ? साधारण व्यक्तित्व का कितना हनन ?

लालटेन के प्रकाश से मेरे हाथो मे फैले अखबार पर चित्र देख

मुलुआ कौतुहल से पीछे आ बैठा था। पुकार उठा—'बाघ है क्या ? हुजूर सचमुच बाघ ही तो है ! जय सतनारायण भगवान की !'

मुलुआ से बात करने के लिये काफ़ी कारण हो गया। करवट लेकर पूछा—'कभी बाघ देखा है ?' मनमें विचार था, चिड़िया घर या सर्कस के जंगले में बन्द बाघ देख लेना एक बात है वर्ना बाघ देखना मामूली बात नहीं।

'हुजूर हम लोगों का क्या देखना ऐसे देखा काहे नहीं, खूब देखा है। मरे पड़े हैं। किसी सरकार ने सिकार किया होय ?' उसके मुखसे निकला और विस्मय मे उसके ओंठ खुले रह गये। आदर से उसने मरे हुये बाघ के चित्र को नमस्कार कर दिया।

पूछा—'क्यों बाघ का शिकार करने गये थे ?'

मरे हुये बाघ के चित्र की ओर लगी मुलुआ की आँखे आदर और विस्मय से फैल रही थीं। मेरी बात से उसका स्वप्न टूटा—'अरे सरकार आप लोगो की जूती के गुलाम है। सिकार आप साहब लोग, राजा लोग खेलते है। हम लोग सिकार क्या खेलेंगे ?' आदर के भाव से वह पीछे सरक गया।

मुलुआ बुन्देलखण्ड की किसी रियासत की प्रजा था। अंग्रेज़ी इलाके में डाका मारने के अपराध में चौदह बरस सज़ा काट रहा था। वही बात स्मरण कर ,पूछा—क्यों, तुम्हारे तो रियासत में घर-घर बन्दूक रहती है। शिकार नही खेलते तो क्या डाका ही डालते हो ?'

'अरे सरकार पेट के लिये जानवर गिरा लिया सो एक बात है। नाहर का शिकार दूसरी बात। वो राजा लोगन को काम हैं।' स्मृति में वीर रस के समावेश से वह तनकर बैठ गया। आँखें चमक उठी—'सिकार सरकार राजे-रजवाडे खेलते है, अपसर खेलते है। जैसे सुना इस जङ्गल में नाहर आया है। रियाया के नाम डोंडी पिट गई। चार गाँव की रैयत जङ्गल को घेर लेती है। जङ्गल को छानकर खेदा होता

है। नाहर घेर लिये जाते है। तब सरकार हाथी पै आनकर मचान पर बैठते है'—वह वीर आसन से उचक उठा। कल्पना ने उसके हाथों में बन्दूक थमा दी। निशना साधकर वह बोला—'तब सबसे पहली गोली सरकार की दन-से चलती है। कभी जंट साहब भी रहते है। सरकार चूक् जायॅ तो रजवाडे लोगों की गोली। बन्दूकची भी साथ में रहते है।'

मुलुआ अत्यन्त उत्साह से हाथ और नेत्रों के संकेत से शिकार का वर्णन कर रहा था—'ऐसा होता है सरकार, सिकार !'

'तुमने काहेका शिकार किया है।' फिर भी पूछा।

'अरे सरकार यही कभी ससा, साही, हिरन, लूमड, दांती गिरा लिया कभी।'

'दांती क्या ?'

'यही जिसे सरकार बनैला सुअर बोलते है।'

'बनैला सुअर ? क्या बन्दूक से ?'

'नही सरकार। बन्दूक मे बहुत खर्चा आता है। तोडेदार हो तब भी कम से कम दो आने का गोली-गट्टा तो चाइये। यही बल्लम कुल्हाडी से। दांती पर पत्थर मारो तो गोली की तरह सीधा आता है। उसे सीधा बल्लम पर ले ! ससुर अपने ज़ोर पर बिधा चला जाता है। बल्लम इस जगह दे, अपनी पसली ठोक उसने कहा—और बल्लम की नोक धरती मे गाड अपना बदन ऊपर तौल दे। नही ससुर बडा जालिम होता है। हुजूर, दांत की चोट से पेड गिरा देता है। नाहर से कम थोडे ही होता है। बस सरकार यह समझो कि नाहर पैना खंजर और दांती भारी लाठी जो पड जाय, खतम कर दे।

'और एक रोज़ तो सरकार समझो कि जिंदगी थी ! बस वही रखने वाले है।'—उसने हाथ जोड आकाश की ओर संकेत किया।

उसने कहा—'सरकार इत्ते-इत्ते बडे नख। पीठ पर छू ही गये तो कई दिन लौ पकती रही।

'इत्ते में भैया आ गये तो हमें बल्लम पर बदन तौले देख बोले' क्या है ? सरकार हमारा बोल न फूटा। धीमे से कहा—'नाहर ! झपटे थे।'

'भैय्या बहुत डरे। बोले'—मुलुआ बडा जुलम किया तुमने। अब कैसे हो ?'

'हमने कही भैया जो कहो ? जान पर आ गई थी।'

विस्मय से मैंने पूछा—'क्या मतलब ?'

'अरे सरकार नाहर के मारने ताई रियाया को हुकुम थोडे ही है। सजा हो जाती है सरकार ! भैया बोले-बस देर न करो मुलुआ।

सरकार तुरतै सर तोड दो रस्सी बाटी। एक मे नाहर के हाथ बाँधे दूसरे में पाँव। दूर तक जमीन पर रक्त खडा था। उसमें चन्दरमा लौक रहे थे। गर्दन से बल्लम खीचा। दोनो बल्लम हाथ-पाँव में डाल, दोनों कन्धो पर रखे आगे भैय्या हुए और हम पीछे। सरकार इत्ती भारी लाश थी। पाँच हाथ से बढती रही। और बोझ सरकार इत्ता कि दबदब के कदम कदम सरक रहे थे नीचे नदी तीर की रेती।

'लाश नदी मे ले गये। कमर कमर तक पानी मे लेजा, ऊपर बीसियो पत्थर रखे। तब राम राम करते आधी रात मे घर लौटे।'

मुलुआ की वीरता से जो श्रद्धा मन में हुई थी उसकी मूर्खता से झल्लाहट मे बदल गई। झल्लाहर कहा—'पागल हो। नाहर मारा था तो दुनिया को बताते नाम होता।

दोनो कान छूकर मुलुआ फिर बोला—'अरे सरकार और कही पटवारी के कान पड जाती घर बार बिक जाता नहीं रियासत की जेल काटत काटत-जिन्दगी बरबाद होती। रियाया कहीं नाहर

मार सकते हैं ? वो सरकार राजा का सिकार है। वो बन के राजा वो जग के राजा।'

मै फिर पत्र में राजा साहब के शिकार का चित्र देखने लगा—राजा साहब मरे हुये नाहर पर पाँव रखे, हाथ में बन्दूक लिये अपनी वीरता का विज्ञापन कर रहे थे।

रियाया से जंगल घिरवा, हाथी पर चढ़, मचान पर बैठ, बारह बन्दूकची पीठ पीछे बैठा उन्हों ने नाहर को मार गिराया था और मुलुआ, नाहर से दो-दो हाथ कर केवल भाले से उसे मार, भयभीत हो अपना हत्या का अपराध छिपा संतुष्ट था।

जो कमबख्त कमीन गुलाम होकर जनमा, वह वीरता क्या करेगा ? करेगा तो उसका दण्ड पायेगा।

३

महादान

सेठ परसादीलाल टल्लीमल की कोठी पर जूट का काम होता था। लडाई शुरू होने पर जापान और जर्मनी की खरीद बन्द हो गई। जहाजो को दुश्मन की पनडुब्बियो का भय था, अमेरिका भी माल न जा पाता।

आखिर रकम का क्या होता ? सरकार धडाधड नोट छापे जा रही थी। ब्याज की दर रोज़ रोज़-गिर रही थी। रुपये की कीमत गिर रही थी और चीज़ो की बढ रही थी।

सेठ परसादीलाल ने चावल का भाव चढता देख चार कोठे खरीद लिये थे। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ करना ही भला था। आठ रुपये मन खरीदे चावल का भाव ग्यारह रुपये जा रहा था। सेठ जी को भगवान की कृपा पर भरोसा था, जो पत्थर मे बन्द कीडे का भी पेट भरता है, वह भला सेठजी की सुध न लेता। नित्य दो घण्टे पूजा कर घर से निकलते थे। 'और काम रह जाय, यह नही रह सकता।' पैंतीस हज़ार मन चावल मे एक लाख साढ़े छियासठ हजार का मुनाफ़ा था। भाव अभी चढ़ रहा था। चावल निकालना सेठजी को मूर्खता जान पडती थी। वे और खरीद रहे थे।

अनाज का भाव चढ़ा तो देस भरके भूखे-नंगे कलकत्त की ओर दौड पडे। ऐसा दुर्भिक्ष कभी किसी ने सुना न था, देखे की तो कौन

कहे ! मनुष्य का रूप धरे जीव अस्थिपंजर अवशिष्ट कुत्तों के साथ जूटे पत्तो और सकोरों पर यों टूटते कि भगवान का नाम ! सब ओर नर कंकाल देहो का कातर आँखे उठा हाथ पसार मुट्ठी भर अन्न के लिये चिल्लाना सुनाई देता—'मांगो, बाबू रे मूठी भात। सेठजी अपनी कोठी से आते जाते इस सब त्राहि-त्राहि और आतंक के वातावरण में राम-राम, हरे राम का जाप करते जाते।

जिस अन्न की एक मुट्ठी के लिये कंकाल समूह त्राहि-त्राहि कर रहा था, वह सेठजी के कोठों में भरा और 'तेजी' की प्रतीक्षा कर रहा था। सेठजी के कोठों में कुछ समय विश्राम कर लेने से चावल का मूल्य सवाया-ड्योढा हो जाता। कोठों में बंद चावल की, रुपये के रूप में बढती यह शक्ति बाज़ार से दूसरे चावल को अपनी ओर खींचे ला रही थी।

क्षुधा पीडितो को देख सेठजी का हृदय पसीज उठता। भुने चने का एक बोरा उनकी कोठी के द्वार पर रख दिया जाता। दरबान प्रत्येक माँगने वाले को एक मुट्ठी चना देता जाता। चने का यह दान एक भयङ्कर संघर्ष का रूप ले लेता। भीख बाँट सकने लायक व्यवस्था बनाये रखने के लिये डाट-फटकार, लात-घूँसे और कभी डण्डे और जूते तक के उपयोग की आवश्यकता हो जाती।

सेठ जी के द्वार पर दान था और भीतर व्यापार। एक के बाद दूसरा दलाल आकर चावल के सौदे की बात करता। भूखे कंगालो के प्रति वह जाने वाली सेठ जी की उदारता, व्यौहार के क्षेत्र में अविचल सेना-पति की दृढता में बदल जाती।

लालजी के यहाँ चावल सुबह से पैंतीस के भाव बिक रहा था। दोपहर में आकर उन्हें मालूम हुआ, मुनीम जी ने पाँच सौ मन सुबह से बेच डाला। लालाजी ने माथा ठोक लिया—'क्या सत्यानास कर डालेगे मुनीम जी ? बन्द करो ! नही भाई, नहीं है अपने पास !'

दलालो की ओर हाथ बडा उन्होंने कहा—'हम् तो भाई साढे पैंतीस के खुद खरीददार हैं!'

दोपहर से लालाजी खरीदते गये। संध्या को साढे अडतीस बिक रहा था। पर लालाजी खरीद रहे थे। रात को भाव उनतालीस पर बन्द हुआ। प्रतारण भरी दृष्टि से मुनीम की ओर देख लालाजी ने धमकाया—'कहो मुनीम जी ?'

सडकों-बाजारो मे बुभुक्षितो की संख्या और उनका चीत्कार बढता जा रहा था लालाजी परेशान थे, सरकार चावल पर कन्ट्रोल कर रही थी। मुनीम जी राय दे रहे थे-समय रहते जितना निकल जाय निकाल दिया जाय।

चिढकर लालाजी ने कहा—'सरकार के दाम लगाये से क्या होता है ? जिसके कोठे मे माल है दाम उसका लगेगा! सरकार कहाँ से लाकर सस्ती बेच लेगी ? कोई कागद का नोट है कि मन चाहा छाप लिया ? सरकार भी लेवेगी तो ब्योपारी से ?'

कन्ट्रोल के कारण प्रकट मे सौदा बंद था। पर असल मे सेठ जी पैंसठ के भाव बेच रहे थे। मुनीम जी चिंता से कहते, 'पैंसठ के भाव खपेगा कितना ? अमान की फसल भी तो आवेगी ?'

सेठ जी ने समझाया—'ऐसा छोटा दिल करने से कहीं ब्यौपार होता है मुनीम जी ? इस भाव से आधे पौने कोठे भी बिकेंगे तो अपनी दोहरी खरी है! आगे के राम जी मालिक हैं।'

सभी बाज़ारों से आदमियो के मक्खी-मच्छरो की तरह पटापट मरने की खबरें आती। सुनकर सेठ जी का हृदय दहल जाता। और भी भयंकर खबरें आने लगी, मुर्दाघाट पर लाशो के ढेर लगे हैं। लकडी रुपये की आठ सेर बिक रही है, बल्कि मिलती ही नहीं। गरीब लोग लाशे छोड चले आते हैं।

'बेचारे अन्न के दाने को तरसकर मर गये। अब उनकी मिट्टी

की यह दुर्दशा ! बेचारों की गति कैसे होगी।' लाला जी की आँखों में आँसू आगये।

कोठी पर रुपये में एक पाई धर्मादय का कटता था। व्योपार व्योपार है, और धर्म धर्म। धर्मादय का रुपया कभी रोकड़ में लगा देते तो उसे ब्याज और मूल सहित फिर धर्मादय में कर देते। वह भगवद्-अर्पण था। कंगालों की दुर्दशा देख उसी खाते में से लाला जी दो बोरी चना रोज़ बंटवा रहे थे। फिर बयालीस हज़ार रुपया धर्मादय मे हो रहा था। जैसे मुनाफ़ा बढा वैसे धर्मादय भी।

'मुनीम जी'—आंखों में करुणा के आंसू भर सेठ जी ने हुकुम दिया—'जो भाव लकडी मिले, बीस हजार की लकडी खरीद कर घाटपर गिरवा दो। किसी बेचारे की मिट्टी की दुर्गति न होने पावे।

अगले दिन सुबह ही छापे में (समाचार पत्र में) छप गया—

'महादान ! सेठ परसादीलाल टल्लीमलका महादान।

'गतिहीनों की अवस्था से जिनका कलेजा मुँह को आ रहा था पसे लोगों ने आ सेठ जी को धन्यवाद दिया।'

विनित स्वर में, अकिंचिन भाव से सेठ जी ने उत्तर दिया—'मै किस लायक हूँ ......सब भगवान का ही है। उन्हीं के अर्पण है ... मनुष्य है किस लायक ?'

४

गवाही

वकील पन्नालाल सक्सेना पाँच बजे के करीब कचहरी से लौटते। बाहर बैठक में दो-चार मुवक्किलो से बातचीत करते, चाय पीते और कपडे बदल वे बाहर निकल जाते। साँझ प्रायः घर के बाहर महफिल-बाजी मे ही कटती। दिन भर की मेहनत के बाद तबीयत तफरीह के लिये मचल उठती। यह उन्हें जिन्दगी का हक मालूम देता। कभी सिनेमा भी चले जाते; लेकिन ज़्यादा लुत्फ़ रहता अगर कहीं ब्रिज या फ्लाश की बैठकें जम जाय।

कभी बैठक उनके अपने मकान पर भी जमती। यार-दोस्त आ जाते। दो-चार हाथ हो जाते। बीच-बीच में हलका ड्रिंक भी चलता। पर वह लुत्फ़ न आता जो चौधरीसाहब या मि० खन्ना के यहाँ मिक्स्ड कम्पनी में आता था। जहाँ कुछ स्त्रियाँ भी हों और ही बात रहती है। खेल भी चलता है, आँखे भी मज़ा लेती हैं, कुछ चुहल होती है, एक गुदगुदी-सी उठ आती है, तबीयत फ़रारी हो जाती है। ऐसे समय पाँच-सात रुपये की हार-जीत का गम नहीं होता।

मि० सक्सेना के अपने मकान पर यह बात न हो पाती। यों उनका परिचय कई माडर्न लेडीज़ से था। उनके मित्र शर्मा भी दो-चार को उनके यहाँ निमंत्रित कर सकते थे। पर यह ठीक न जंचता;

क्योंकि स्वयम् उनकी श्रीमती ज़रा परदा करती थीं। जो सन्तोष सक्सेना साहब को अपने घर न मिल सकता उसके लिये उन्हें बाहर जाना ही पडता।

मि० सक्सेना को रात में बाहर देरी हो जाती। गौरी इन्तज़ार में बैठी कुढा करती। देर न भी हो तो भी, कचहरी से आये और फिर बाहर चले गये; यह भी कोई तरीका है? सुबह यों ही ज़रा अबेर से उठते। बाहर दफ़्तर में मुवक्किलों से बात करते-करते समय निकल जाता। जल्दी में खाना खाया और कचहरी चले गये।

घर में नौकर-चाकर होने पर भी देखभाल का काम ही काफ़ी था। घर पर की चीज़ बस्त सहेजने, लल्लू के कपडे सीने, स्वेटर, मोज़े बुनने में ही सब समय निकल जाता और घर का काम पूरा न हो पाता। कभी मन बहलाने के लिये वह उपन्यास या पत्रिका पढ़ने लगती और उसमें मन रम जाता तो ऐसा जान पडता कि काम का हर्ज हो रहा है। इतनी व्यस्तता होने पर भी वकील साहब का घर से केवल भोजन-बिस्तर का सम्बन्ध उसे खल जाता। यह भी नहीं कि वकील साहब गौरी से प्रेम न करते हों। ज़ेवर और कपडे बिना कहे ही आते रहते। फर्माइश के लिये ही मौका न आ पाता। इनकार की गुंजाइश न थी।

वकील साहब गौरी के प्रति शब्दों से भी प्रेम प्रकट करते परन्तु गौरी के मन में जैसे विचार बैठ गया था कि वह केवल फ़ुर्सत के समय प्रेम कर दिल बहलाने की चीज़ है—जैसे पिंजरे में लटकी मैना। कभी मन में आ गया, पिजरे के समीप खडे हो उससे कुछ बोलने बतराने लगे। ख़याल न आया था फ़ुर्सत न हुई, न सही। वकील साहब के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं कि दिन भर वे क्या करते है, किन लोगों से मिलते है,·· ········ वह क्या जाने? वे उसे साथ नहीं ले जाते क्यों कि उनके यहाँ परदा है। परदे में क्या रखा है—

वह सोचती—'बडे-बडे घरों की बहुएँ सब जगह आती-जाती हैं। पर्दा नही करतीं। वह भी पति के साथ आये जाये। पर वकील साहब को यह पसन्द न था। कभी गौरी सोचती, उन्हे यह सब पसन्द नही तो फिर वह खुद ऐसी जगह क्यो आते-जाते है।

ऐसी बातों पर कुढ़ कर गौरी मुँह फुला लेती तो उसे एक-दो दिन का फाका हो जाता। जब वह मुँह खोल बैठती, वकील साहब नाराज़ हो जाते। कभी डॉट देते—'ऐसे ही मेम साहब बनना था तो विलायत में शादी की होती या ईसाइन बन जातीं।' दोनो रूठ जाते। गौरी तीन-तीन दिन बिन खाये रह जाती। वकील साहब और अधिक बाहर रह जाते। घर आते तो और भी चुप और बेसरोकार जैसे किसी होटल में आ टिके हो।

ऐसे झगडो के बाद सुलह होती तो वकील साहब गौरी को समझाते—'जब दुनिया में रहना है तो दुनियादारी निभानी ही पडती है, चार आदमियो के यहाँ उठना-बैठना होता ही है। सब जगह सब तरह के लोगों में तुम्हें कैसे लिये फिरें? बीस तरह के आदमी होते है, बीस तरह की बाते कह जाते है। घर की स्त्रियों की एक मर्यादा होती है, सम्मान होता है। कोई बेहूदा बात उनके सामने बक दे तो क्या किया जाय? शरीफ आदमी का तो मरन हो गया! भले घराने की औरतें ऐसी जगह जायें क्यो? अपनी इज़्ज़त अपने ही रखे रहती हे। तुम घर मे उकता जाती हो, तुम्हें कोई बाँधे तो है नही? पडोस मे इन्सपेक्टर साहब है, धनपुरावाली रानी साहिबा है। चली जाया करो, उठ-बैठ आया करो! हमे अदालत पहुँचा कर मोटर योही थान पर खडी रहती है। ड्राइवर दिनभर सोया ही तो करता है। अम्मा को साथ ले अपने मेल-मिलाप की सहेलियो मे हो आया करो! इतने वडे-बडे रईस और तल्लुकेदार लोग हैं, अपने हिन्दुस्तानी ढंग से रहने वाले अफ़सर लोग है। इन सब के घर से कोई बाज़ रो से मर्दों

के साथ थोड़े ही कूदती फिरती है। अपने सलीके से, पर्दे के साथ सब जगह आना-जाना भी होता ही है।

× × ×

लगभग चार महीने गौरी ने वकील साहब के बाहर आने-जाने के विषय में मुंह फुलाकर कोई झगड़ा न किया। दोपहर में वह प्रायः माल साहब या रानी साहिबा के यहाँ चली जाती। रानी साहिबा की कोठी पर परदा था परन्तु वैसे होटल, रेस्टोरॉ, सिनेमा या पार्टी में जाने से भी एतराज़ न था, बशर्ते रिश्तेदार या परिचय के लोग न हों। गौरी एक रोज़ माल साहब की साली के साथ मैटिनी (दोपहर) में सिनेमा भी हो आयी; परन्तु वकील साहब से कहने का साहस न हुआ। वकील साहब को सन्तोष था, गौरी को समझ आगयी। शर्मा के साथ उनकी तफरीह का प्रोग्राम बिना अड़चन के चलने लगा। कभी अदालत की छुट्टी से पहली रात वे रातभर भी घर से ग़ायब रह जाते तो गौरी को झुंझलाहट न होती। चिन्ता होती तो केवल यह कि, हाय खाना जाने कहाँ और कैसे खाया होगा?

× × ×

अगले दिन अदालत की छुट्टी थी। शाम को वकील साहब का प्रोग्राम शर्मा के साथ एक ब्रिज पार्टी में जाने का था। कई दिन से इस पार्टी का लालच शर्मा ने उन्हें दिया था। मि० जोशी के यहाँ मिक्स्ड पार्टी थी। शर्मा से सुना था, काफी ज़िन्दा-दिल्ली रहती है। मिसेज़ कोहली ब्रिज में अच्छे-अच्छों के कान काटती है। बेगम रशीद भी खेलती तो ऐसा-वैसा ही है पर मज़ाक खूब चुस्त करती हैं। और कोई एक मिसेज़ सक्सेना है, कुछ सहमी हुई-सी। ज़रा उनकी आँखों में आँखें गड़ा दो तो चेहरा लाल हो जाता है। उनका झेंपना कमबख्त कलेजे को पार कर जाता है। तबीयत करती है उसे देखा ही करे। तुम्हारी मिस सिंह तो उसके सामने झांख-सी जान पड़ती हैं। यार, इस मिसेज़

सक्सेना पर कुछ खर्च करो तो हाथ आसकती है—कसम तुम्हारी, अभी कच्ची ही जान पडती है। बेगम रशीद और मिस सिंह की तरह घुटी हुई नहीं है।

नयी महफिल में जाने के शौक में वकील साहब ने काली अचकन पर ब्रुश और लोहा करवा मँगाया था और चूडीदार पायजामे को चिकने कागज की सहायता से चढ़ा रहे थे। बाहर जाने के ढंग से बढ़िया साडी और जेवर पहने आ कर गौरी ने पूछा—'क्या गाडी कहीं जाने के लिये रुकवा रखी है ?'

'हाँ, ज़रा शर्मा साहब के यहाँ जा रहा हूँ। उनके एक दोस्त के यहाँ खाना है ... क्यो ?'

'अभी तो कपडे पहन रहे हो ! न हो ड्राइवर हमें माल साहब के बंगले मे छोड दे। उनके यहाँ से बुलाने आयी हुई है। बहुत ज़िद कर रही है। पाँच मिनिट लगेंगे। लौटते मे हम उन्ही की गाडी मे आजायंगी। सक्सेना साहब को इसमें कोई असुविधा न थी। गौरी चली गयी।

शर्मा के यहाँ ज़रा हल्की-सी जमा कर वे दोनों जोशी के यहाँ पहुँचे। बाहर बरामदे मे ही ब्रिज का शोर सुनाई दे रहा था :—स्पेड्स ... ट्र हार्ट्स थ्री नोट्रम्प डब्लस, ताशो के पत्तों की फर्राहट और प्वाइंट्स की गिनती। भीतर छोटी-छोटी मेज़ो पर चार-चार, छ.-छ. की बैठकें सब कुछ भूल, पत्तो में रम रही थीं। मिसेज़ और मिस्टर जोशी जगह-जगह घूमकर देख रहे थे कहाँ मिठाई या नमकीन की तश्तरी खाली हो गयी, कहाँ चाय, सोडे या एकाध पेग की दरकार है।

मि० जोशी ने शर्मा की पीठ थपथपा कर उनका स्वागत किया। शर्मा ने वकील साहब का परिचय कराया। अधिकांश लोगों का ध्यान पत्तों में गड़ा हुआ था। जिन्हें कुछ ध्यान देने की फुर्सत थी, उन्ही से

जोशी सक्सेना साहब का परिचय कराने बढ़े.—'आप माल अफसर श्रीवास्तव साहब की साली है। आपके हसबैण्ड जंगलात में सुपरिण्टेण्डेण्ट है। ... 'आप मि० पन्नालाल सक्सेना मशहूर वकील !

मि० जोशी के शब्द सक्सेना साहब को सुनाई देने बन्द हो गये। सामने की दीवार के समीप मेज पर जमी टोली के समीप खडी, खेल देख रही एक स्त्री की पीठ की ओर वे ध्यान से देख रहे थे। उसकी साड़ी ने उनका ध्यान आकर्षित किया था। जोशी के मुख से उनका नाम सुन स्त्री ने घूम कर देखा। ठिठक कर, घबरा कर वह एक ओर चली गयी। आश्चर्य से, लज्जा से, गुस्से से वकील साहब के सिर में चक्कर आ गया, जैसे वे गिर पडेंगे या जाने क्या कर बैठेंगे।

किसी तरह अपने आपको संभाल कर वकील साहब निकल आये। गाडी के समीप खडे, सिगरेट सुलगाते ड्राइवर को डांट कर बोले—'घर चलो।'

मोटर की खिडकियों की बगल से उडते जाते बिजली की रोशनी से चकाचौंध मकान और दूकानें उन्हें दिखाई न पड रही थीं। उन्हें दिखाई दे रहा था मिसेज सक्सेना के सम्बन्ध में शर्मा का रस ले-ले कर कुचेष्टापूर्ण बातें करना ! और गौरी की दगाबाज़ी—' माल साहब के यहाँ से आयी है, ज़रा उनके साथ जा रही हूँ !''.....और उन्हें घर से बाहर देर हो जाने पर उसका छलना-पूर्ण तिरिया चरित्र ! उनके दांत होठो में गडे जा रहे थे।

कोठी के अहाते में मोटर के पहुँच जाने पर उन्हें ख्याल आया—'क्यों वे यों ही चले आये ? चाहिये था वहीं उस हरामज़ादी की चुटिया पकड लातों से उसकी जान निकाल देते। बाहर दफ़्तर की कुर्सी पर बैठे दोनों बाहें सीने पर बांध, खूनी आँखों से वे गौरी के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

कानूनी पेशे की कुर्सी पर बैठते ही सूझा—'नहीं, वह गलती होती ! लोगों के सामने तमाशा बन जाता और कानूनन बात ठीक न

होती। ऐसी इज्जत बिगाडने वाली दगाबाज, बदमाश औरत को कत्ल कर देने के सिवा और क्या सजा हो सकती है ? कानून की गिरफ्त को वे खूब समझते थे। औरत के कत्ल के ऐसे दो मुकदमे वे लड चुके थे।

उनका दिमाग कानून की लाइन पर चलने लगा औरत की बेहयाई से इश्तआल में आकर की गयी हरकत ·· इन्तहाई इश्तआल पैदा करनेवाले हालत का सिलसिला वे दलील में बाधने लगे·—एक शरीफ घराने की परदानशीन औरत पति को एक सहेली के यहाँ जाने का विश्वास दिला कर उसका बदचलन लोगो की सोहबत में जाना · जहाँ औरतें बेनकाब हो, शराब पी जारही हो ! उसकी बीवी के बारे में शर्मा जैसे मशकूक चाल-चलन के आदमी का मज़ाक ··

पति का वहाँ पहुँच जाना।

पहुँच जाना किस सिलसिले से ?

एक दोस्त के साथ।

उस दोस्त की गवाही

पति का खुद ऐसी जगह अक्सर जाना ?

पति के अपने चाल-चलन का सवाल अलहदा है, लेकिन उसे इश्तआल तो आ सकता है।

दिमाग़ी परेशानी के कारण वकील साहब के लिये कुर्सी पर बैठे रहना मुश्किल हो गया। पीठ पीछे हाथ की उँगलियो को एक दूसरी में उलझाये वे फर्श पर चक्कर काटने लगे। क्रोध और बेचैनी बढती जा रही थी। गौरी के अभी तक न लौटने की वजह ? उसकी इतनी मजाल ? वे चाहते थे, एकदम गौरी उनके सामने आ जाय और वे मुँह से बिना कुछ बोले दोनों हाथों से उसका गला घोट दे।

विचार और कल्पना के लिये मिले समय ने मस्तिष्क को गहराई में उतार दिया। सर्वनाश की उत्तेजना का ज्वार उतर कर वे पैतरे से

गौरी को सज़ा देने की बात सोचते हुए फर्श पर आगे-पीछे चहल-कदमी करने लगे ।

उसी समय माल साहब की मोटर अहाते में आयी और कोठी के पिछवाडे के दरवाज़े के सामने रुकी । गाडी के दरवाज़े के खुल कर बंद होने का शब्द भी सुनाई दिया । भय से काँपती हुई गौरी आँगन से अपने कमरे की ओर जाती हुई भी सक्सेना साहब की कल्पना में दिखाई दे रही थी ।

क्रोध और उत्तेजना से उसका गला घोंट देने के लिये वकील साहब की बाहें फड़क उठीं · · · ·

किन हालत में ? गवाही क्या होगी ? · · · ·

कानूनी दलील और गवाही की अदृश्य ज़ंजीरों ने उन्हें हिलने न दिया··· कल्पना मे ही वे गौरी का गला घोटने का सन्तोष पा रहे थे । और सौच रहे थे :—फाहशा औरत का पति कहलाने से यों ग़म खाना ही क्या बेहतर नहीं ?

५

वफ़ादारी की सनद

पण्डित बंसीधर शहर जाने की पोशाक में, पयजामा, अचकन और किश्तीनुमा कढ़ी हुई टोपी पहने, मुँह अंधेरे से बिल्हरा स्टेशन पर टहलते हुये गोरखपुर जानेवाली गाडी की प्रतीक्षा कर रहे थे। पन्द्रह-बीस दूसरे देहाती भी मोटे-मैले कपडो में, कंधे पर चदरा, झोली और हाथ मे लाठी लिये शहर की गाडी की प्रतीक्षा में, स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर बैठे बात कर रहे थे। एक बहू चटकीली धोती पहने, दाये हाथ से थमे घूंघट मे दो उंगलियो से आँख भर के लिये जगह बनाये, भीड की ओर पीठ किये, चाव से नये दृश्य देख रही थी। दूसरी मैले आँचल में अपने मैले बेटे को नज़र से ओट किये बासी रोटी का टुकडा खिला रही थी। कोई नये ढंग का जवान बीडी पी रहा था और कही दो-चार पुराने ढंग के आदमी मिल, लत्ता या बान सुलगा, चिलम से दम खींच प्रतीक्षा के शैथिल्य का बोझ हलका कर रहे थे। बात-चीत प्रायः कचहरी सम्बन्धी थी। गाडी नौ बजे गोरखपुर पहुँचती थी। प्रायः कचहरी मे तारीख़ पर पहुँचनेवाले लोगो की ही भीड होती।

गाँव भर में एक पण्डित बन्सीधर ही एण्ट्रेंस तक पढ़े, सफेदपोश, भले आदमी थे। इतना पढ़ लिख कर भी उन्हों ने सरकारी नौकरी नहीं की। अपना पुश्तैनी चला आया काम ही सम्भाला। आस-पास कई पुरवो में बंटी घरकी सत्तर-अस्सी बीघे ज़मीन थी, एक बजाज़े की

दुकान, लेन-देन का जमा हुआ कारोबार, और कोठे भी भर लेते। सरकारी नौकरी में मुसाहबियत चाहे जितनी हो परन्तु भीतर से खोखला ही रहता है। लावना के थाने के दारोगा साहब, यों बारह कोस तक उन्हें सलामी मिलती रहे, आये दिन पण्डितजी के यहाँ रुक्का भेज रकम उधार मँगाते रहते थे। पण्डितजी उनके सामने चाहे सलाम में दोहरे हो जायँ, पर दारोगा साहब की क्या बिसात कि उनकी बात टाल दें।

पण्डित जी भी कचहरी की ही बात सोच रहे थे। मुरकई और गफूरा दोनो के मामले में फैसले की तारीख़ थी। राधे पर बेदखली की दरख़ास्त देने की थी। सोच रहे थे, इतना तो वकील का मेहनताना लग गया। दस-एक रुपये फैसले की नकल के नाज़िर ज़रूर लेंगे, डेढ-एक सौ ऊपर से लग गया। सरौ, ज़मीन की तीन बरस की कमाई निकल गई। लगान जेब से भरेंगे। अरे, फिर फ़ायदा ही फ़ायदा है एक दफे खर्च हुआ तो क्या ? इस मोल गोंइड के पाँच बीघे खेत बुरे नहीं। फिर उन्हें बाज़ार में भी कुछ काम था। ·· शाम को चार बजे की गाडी पकड ले तभी ठीक है। नहीं तो शहर मे ख़र्च ही ख़र्च है, आराम सरौ कुछ नही। लेकिन गाड़ी ससुरी को क्या हो गया ? पौ फटते आ जाती थी !

प्लेटफार्म पर बैठे दूसरे लोग गाडी का आना-जाना भाग्य की बात मान, बतियाते, चिलम का दम लगाते, पसीने से गंधाते मोटे-मैले कपडों के नीचे बदन पर फूली घाम खुजाते, जम्हाई लेते प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु पढ़े लिखे पण्डितजी के लिये रेलगाडी का आना-जाना आंधी-पानी की भांति अगम रहस्य न था। वह जानते थे, रेल को आदमी ही चलाते है। उसके आने-जाने, 'लेट होने' का सामाचार और कारण स्टेशन मास्टर साहब से मालूम हो सकता है।

× × ×

प्रतीक्षा से उकता दो वेर पण्डितजी ने कागज लिखते स्टेशन मास्टर साहब से मुस्कराकर आदाब कर पूछा—'गाडी क्या लेट है ? कितनी लेट है ?'

स्टेशन मास्टर साहब ने समीप मेज़ पर रखे टेलीफोन (इंटरलॉकिंग टेलीफोन) को गाली दे, उत्तर दिया—' कुछ बोल ही नहीं रहा। तार भी नहीं चल रहा है। जाने मखुआ स्टेशन पर सब मर गये !'

पूर्व मे सूर्य अमराइयो से बॉस भर ऊपर चढ़ गया। धूप फैल गई थी। चारो ओर कमर तक उठे ऊख के खेतो पर पडी हल्की ओस से शीतल हो रही प्रात. वायु ओस उडजाने से गरम होने लगी। समय को केवल सुबह, दोपहर और सांझ में बॉट सकने वाले देहाती भी, प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की वरबादी अनुभव करने लगे। वे बैठे से खडे होकर और खडे से बैठ कर व्याकुलता प्रकट करने लगे। पण्डित जी बार-बार ऑखों के आगे हाथ से छाया कर आकाश में बॉह फैलाये सिगनल की ओर देखते। वह यो निष्प्राण, निश्चल खडा था, जैसे कभी सदियों से हिला ही न हो। पण्डितजी के माथे पर हल्का पसीना आने लगा। कुछ धूप मे अचकन की गरमी से, और उससे अधिक तारीख़ पर कचहरी न पहुँच सकने की चिन्ता से।

सभी लोगो की ऑखें पूर्व में मखुआ से आती लाईन की ओर चली गयी। ईंजन का धुआं नहीं, कुछ हल्की सी धूल हरे पेडो के ऊपर, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश से सफेद जान पडते नीले आकाश में दिखाई दी। कानो ने कुछ अस्पष्ट सा शब्द भी सुना—रेल की सीटी और गडगडाहट नही, मनुष्य के कण्ठ की चीख़ पुकार सी।

और फिर कुछ ही क्षण मे दिखायी दिया—झण्डे उठाये बहुत से लोग बाहें उठा चिल्लाते, नारे लगाते चले आ रहे हैं। बावली भीड के समीप पहुँचने पर सुनाई दिया—बन्दे ऽ ऽ ऽ मातरम् ! हिन्दू-मुसलमान की ऽ ऽ ऽ जय ! भारत माता की ऽ ऽ ऽ जय ! गॉधी बाबा

की''''जय ! हमारे ''ली ऽ ऽ ऽ डर जे ऽ ऽ ल से छो ऽ ऽ डो ! ''अंग्रेज़ सरकार का ऽ ऽ ऽ नास हो ! '''''

× × ×

बिल्हरा स्टेशन पर गाडी की प्रतीक्षा करते लोगो की व्याकुलता कौतूहल में परिवर्तित होगयी। भीड में किसी को सम्बोधन कर कोई कुछ नहीं कहता परन्तु सभी लोग सब कुछ समझ जाते है। सुनने की भी आवश्यकता नहीं होती। लोग स्वयम ही समझ लेते है। भीड निरन्तर नारे और जय-जयकार की पुकार लगा रही थी। साँवले चेहरे धूप से लाल हो पसीने से चमक रहे थे। भर्राये हुए गले से लोग पुकार रहे थे—'देस में देसी लोगों का राज हो गया !'

पीढ़ीयों से दबी निर्बल की घृणा और प्रतिहिंसा ऐसे उछल पडी, जैसे कोई फ़ौलादी स्प्रिंग कब्ज़े से निकल कर उछल जाय। पीढियों तक भूख न मिटने और आवश्यकताएँ पूर्ण न होने से आत्मविश्वास और गौरव को खोचुके, ऊसर में उगे पौधों जैसे चेपनपे, गठियाए से लोग, ग़रूर और सरूर में हाथ-पाँव फेकने लगे। जैसे चीटियों का दल सदा उन्हें खाती रहनेवाली गिरगिट का सिसकता शव पाकर उस पर टूट पडे, चढ बैठे। वैसे ही सदा से त्रस्त, दलित रहने-वाली, मनुष्यत्व खो चुकीं प्रजा अपने विश्वास में सिसकते हुए अँग्रेज़ी साम्राज्य के शव पर कूदने लगी।

उस साम्राज्य का अंग-भंग कर उसे समाप्त कर देने के लिये जो कुछ भी सरकार की शक्ति के चिह्न रूप दिखाई दिया, उसे उखाड फेकने, तोड डालने और भस्मकर देने के लिये भीड आतुर हो गयी।

पण्डित बंसीधर, मुरई, गफ़ूरा सब लोग कचहरी भूल गये। उनपर हुकुम चलाकर फैसला देने वाले का अस्तित्व न रहा। हिन्दुस्तानियत के गर्व से सीना फुलाये, अपनी और अपने देश की जय पुकारते, शत्रु का नाश पुकारते स्टेशन के प्लेटफार्म पर इकट्ठे हुए लोग कुछ से कुछ हो

गये। देखते देखते स्टेशन के सामने की लोहे की पटरी, जिससे अंग्रेज सरकार ने देश की धरती को बाँध रखा था, उखड कर टेढ़े बाँस की कमची की तरह हवा में झूलने लगी ; पटरी के सलीपर बिखर गये।

पण्डित जी अपनी स्थिति और सम्मान के विचार से आगे हो गये। लोग स्टेशन की कोटरियो पर झुक पडे। सब कुछ टूट-फूट गया। बडे बाबू पहले आशंकित और त्रस्त हुये और फिर भीड के साथ जय-जय पुकारने लगे। स्टेशन के गोदाम में कुछ माल के साथ मिट्टी के तेल के कनस्तर थे। भीड उधर बढ़ी। मुरई ने एक कनस्तर उठा पक्के फर्श पर पटक दिया। बहता कनस्तर उठा आग लगाने के लिये तेल छिडका जाने लगा।

पण्डित जी ने समझाया—'हरे राम, नुकसान काहे करते हो भैय्या!'

बीसियों कण्ठों से उत्तर मिला—'हरे, सारी सरकार का माल है, इसे फूंक ही देना चाहिये।'

कुछ ही मिनिट में छोटा सा स्टेशन लाल-पीली धुमैली ज्वालाओं का स्तूप सा बन गया। आस-पास के गाँवो से जयकारे लगाते गिरोह आ-आकर भीड में मिलने लगे। बढ़ती हुई भीड मन्थर गति से परन्तु अपने बल के विश्वास से आगे बढी। रेल की पटरी और सडक के बीच, बरसों से अडिग खडे लोहे के मोटे खम्भे, जिन्हें यदि पशु भी सींग या पीठ से छू देते तो किसान सरकारी क्रोध की आशंका से काँप उठते थे, विशाल भीड़ के सामने कच्ची ऊख की भाँति कुडमुडा कर गिरने लगे। वे खम्भे भीड़ के क्रोध का शिकार थे केवल इसलिये कि वे सरकारी सम्पत्ति थे। उनके गिर जाने से, रेल की पटरी उखड जाने से सरकार के असमर्थ हो जाने की नीति में और जनता की असुविधाओ का विचार होगा तो केवल शहर से आनेवाले दो एक चतुर व्यक्तियो को या पण्डित बंसीधर को।

उमड़ती भीड़ लावना के थाने की ओर चली। विशाल ब्रिटिश

भात खाया। बासी रोटी से गुड खाया। पण्डितजी बिना किसी चुनाव के, बिना किसी नियुक्ति के इलाके के पंच कहिये, चौधरी कहिये, तहसीलदार, डिपटी, जो कहिये बन गये। सब ओर से उन्हें जैरामजी और रामजुहार होती। लोग आदर पहले भी करते थे परन्तु तब पैसे और दारोगा साहब से दोस्ती का दबदबा था। अब जैसे वे रैयत के अपने हों। आँखें बदल गई। एक उत्साह और उमंग सब ओर थी।

चौथे दिन सुबह ही मखेरा और पतोली से तीन आदमी परेशानी की हालत में शरण ढूंढ़ते बिल्हरा पहुँचे। एक की बाँह में बंदूक की गोली का घाव था। उन्होने बताया—'जिले से बडी भारी फ़ौज और पुलिस तोप बन्दूक लिये बग़ावत को दबाती चली आ रही है। गांधीजी की जय पुकारने, गांधी टोपी लगाने और कांग्रेस का झण्डा उठानेवाले सब लोग गिरफ्तार हो रहे है। ''भारी-भारी जुर्माने हो रहे हैं। जहाँ बागियों का पता नही चलता, सरकार गाँव में आग दे देती है। सिपाही बहू-बेटियों को बेइज्जत कर रहे है। बडे-बडे किसानों की ज़मीन-जायदाद जब्त हो गई। बहुत जगह रियाया और फौज मे लडाई हुई, फौज ने गोली चलाई।'

बिल्हरा में आतंक छा गया। ग़फ़ूरे और कानसिंह के चेहेरे पर भी झाँई फिर गई परन्तु उन्होंने सबके सामने खम ठोककर कहा—'सरौ चाहे सिर उतर जाय, दुश्मन के आगे सिर नही झुकायेंगे। जो अपने बाप की औलाद होगा, मर जायगा पर पीठ नहीं दिखायेगा।' वे अपने घर जा बल्लम और गडाँसा पैनाने लगे।

पण्डितजी ने भी सुना और, हामी भरी परन्तु मनमें सोचते रहे 'सरकार से भिडना क्या खेल है ? मगर से बैर कर पानी मे रहना ? ससुरे नंगों का क्या है ? उनकी कौन इज्जत है, उन्हें किसका डर ? भले आदमी को डर ही डर है ''।

चौथे दिन का चौथे पहर था। बिल्हरा के पास से गुज़रती गोरखपुर

की पजरौली सड़क पर लारियाँ ही लारियाँ चली आईं। यह लारियाँ दूसरी रंगबिरंगी, नित्य दिखाई देने वाली लारियों से भिन्न भूरी-भूरी, ख़ाकी-ख़ाकी रंग की थीं।

सड़क के किनारे चोर और दरोग़ा का खेल खेलते बच्चों ने गाँव में जा, भय से फैली आँखों से ख़बर दी—'सरकार आई है।'

गाँव से बाहर आ आशंकित प्रजा ने देखा—ख़ाकी मोटरें गोइंड की भरती में फ़सल को रौंदती चली आरही हैं। ऐसी मोटरें लोगों ने कभी देखी न थीं। लोहे की चादर से मढ़ी और उसमें मगरमच्छ की थूथनी सी बन्दूकें। बाहर निकली हुई रैयत का दिल बैठ गया। बहुएँ घर में जा छिपी और बच्चे उनकी गोद में।

ख़ाकी वरदी पहने, भारी बूटों से धरती को कँपाते सिपाही कंधोंपर बन्दूकें लिये, गांव मे घुस आये। पीछे एक साहब लम्बा-लम्बा, पतला टोपके नीचे भी धूप की चकाचौंध से अधमुँदी आँखों से एक नजर मे सब कुछ देखता, दांतों में दबे चुरट से हल्का-हल्का धुआँ छोड़ता आ रहा था। लावना के दरोग़ा साहब के आगे झुक-झुक कर बताते चले आ रहे थे। साहब के लाल-सफ़ेद चेहरे पर एक अजीब सी तिरस्कारपूर्ण मुस्कराहट थी, जैसी गडरिये के कुत्ते के मुखपर होती है, जब सैकडों भेड़ों का झुण्ड उसकी एक भौं भौं से त्रस्त होकर सिमिट जाता है।

× × ×

गाँव पल्टन से घिर गया, गाँव के उत्साही नौजवान, ग़फ़ूरा, मतई कानसिंह, जिन्होंने अंग्रेजी राज मिटाने और सुराज स्थापित करने मे प्रमुख भाग लिया था, सनक गये। जरनैल साहब की कुर्सी गाँव के मे बची पीपल के नीचे लग गई। तहसीलदार साहब अदब से सामने खड़े थे। दारोगा साहब थाने में सिपाहियों, चौकीदारों और पल्टनिया सिपाहियों को लिये बदमाशों को गिरफ़्तार कर रहे थे। मतई, गफ़ूरा और कानसिंह का कहीं पता न चला।

दरोगा साहब अपना दल लिये पण्डितजी की चौपाल पर पहुँचे। पण्डितजी ने शरीर की कम्पन वश में कर निगाहों में मुलाहिज़ा भरे दारोगा साहब की ओर देखा। दारोगा साहब नितान्त कर्यव्य निष्ठ थे, जैसे वे पण्डितजी को पहचानते ही नहीं! पण्डितजी को भी हिरासत में ले लिया गया।

कर्नैल साहब के सामने पहुँचते ही पण्डितजी ने झुककर सलाम किया। बचपन की पढ़ाई काम आई। अंग्रेज़ी में बोले—'हुजूर हम शरीफ़ आदमी हैं, सरकार को टैक्स देते हैं। हुजूर बदमाशों ने ज़बर-दस्ती हमारे घर पर बाग़ियों का झण्डा लगा दिया। हुजूर हमें मुआफ़ी मिले। हम बदमाशों का पता दे सकते हैं।'

साहब के चेहरे पर कोई परिवर्तन न आया। मुखसे चुरूट हटाये बिना उन्होंने हुकुम दिया—'बोलो।'

पण्डितजी सिपाहियों को साथ ले अपने अनाज के कोठे में गये और वहाँ ग़फ़ूरे, मतई और कानसिंह छिपे हुए मिले।

साहब के लिये गाँव से बाहर खेमा लग गया था। गाँव की दुर्गंध से उकता कर और अपनी उपस्थिति आवश्यक न जान, वे उठकर चले गये। उनके चले जाने के पश्चात् दारोग़ा साहब शान्ति स्थापना की उचित व्यवस्था करने लगे।

पण्डितजी के सरकारी गवाह बनकर छूट जाने के उदाहरण से सभी लोग गवाही देने लगे परन्तु दारोग़ा साहब ने पण्डितजी के छोटे भाई रामधर और बड़े पुत्र गिरधारी को गिरफ़्तार कर लिया। उन्होने सिपाहियों को आज्ञा दी कि ख़ास बदमाशों के अलावा शेष सब रैयत को दस-दस जूते लगाकर छोड़ दिया जाय!

रैयत को जूते लगाने से सिपाहियों का मनोविनोद अवश्य हुआ परन्तु इससे उनकी क्षुधा निवृत्ति न हुई। उनके भोजन की व्यवस्था के लिये दारोग़ा साहब ने हुकुम दिया—'दो बोरी आटा, दूसरी रसद

और एक कनस्तर घी पण्डित बंसीधर के यहाँ से ले लिया जाय !'

पण्डितजी के एतराज करने पर सूबेदार साहब ने एक सिपाही को दो जूते पण्डितजी के सिर पर लगाने का हुक्म दिया।

जूते खा पण्डितजी घर लौटने के लिये पीपल के तले से हट आये, परन्तु पहुँचे सीधे कर्नैल साहब के ख़ेमे में।

अर्दली के हाथ में पाँच रुपये का नोट दे उन्होंने साहब को सलाम बोला।

मुँह में चुरूट दबाये साहब ने पूछा—'वेल !'

पण्डितजी ने अपनी शिकायत सुनाई—

'हुजूर, वफादार रियाया के साथ ऐसा जुल्म हो रहा है ?'

'हूँ'—साहब ने उत्तर दिया और अर्दली को हुकुम दिया—'दारोगा को बोलो, इस आदमी के घरको तकलीफ़ नई होगा।'

और फिर सज्जनता के नाते पण्डितजी को अंग्रेज़ी में आश्वासन दिया—'सरकार का रोब (Prestige) कायम करने के लिये ऐसा भी करना पडता है। कोई बात नहीं है। बग़ावत के परिणाम में बहुत कुछ होता है।'

अनुनय के स्वर में पण्डितजी ने दरख़ास्त की—'हुजूर हम शरीफ खान्दानी (Respectable) हैं। हमारे खानदान ने सदा सरकार की खिदमत की है। हमें हजूर के हाथ से शराफ़त और वफ़ादारी की सनद मिल जाय ! हम से बदमाशों के जुर्म का हरजाना न लिया जाय !'

साहब पण्डितजी के चेहरे पर निगाह लगाये चुप रहे। उनकी आँखों और होठों पर अब भी वही मुस्कराहट थी। मेज़ से फ़ाउण्टेनपेन उठा उसे खोलते हुये उन्होंने कहा—'हम लिखेगा तुम हिन्दुस्तानी शरीफ़, वफ़ादार है।'

साहब ने खडे-खडे पुर्ज़े पर दो पंक्तियाँ लिख मुस्कराते हुए कागज़ पण्डितजी की ओर बढ़ाते हुये कहा—'अगर तुम हमारा मुल्क का आदमी होता, हम तुमको दग़ाबाज़ (Traitor) कहता और गोली मार देता।'

वॉन हिण्डनबर्ग

सुनामा गरमी की छुट्टियाँ बाहर बिता आई थी। तीन सप्ताह इलाहाबाद मायके में और एक मास आगरा ससुराल में। दो ही मास पश्चात फिर दुर्गापूजा की दो सप्ताह की छुट्टी आ गयी। यों स्कूल से छुट्टी का विचार भला ही लगा। छुट्टी जितनी भी हो अच्छी है। परन्तु फिर से इतनी जल्दी न ससुराल और न मायके ही जाने के विचार से उत्साह हुआ। दोनो ही स्थानो के अनुभव अभी मस्तिष्क मे बहुत ताज़े थे। उन अनुभवो की स्मृति से उसका सिर उधेडबुन मे झुक जाता। उज्ज्वल तावे की झलक लिये गेहुँए रंग पर चिन्ता की छाया आ जाती और पतले ओठ भीतर की ओर खिच जाते।

सुनामा ने सोचा, दो सप्ताह एकान्त और शान्ति में बितायेगी। स्कूल के दिनो मे समय न मिलने से अनेक काम शेष थे। स्कूल के समय व्यस्तता से मधुमक्खियों के छत्ते की भाँति गूँजता रहनेवाला लडकियो के स्कूल का बडा बंगला और उसका अहाता छुट्टी के समय एकान्त और शान्त हो जाता है, जैसे मेला समाप्त हो जाने पर मेले का स्थान नीरव और निर्जन हो जाता है। छुट्टी की घंटी बजने पर जब दसों श्रेणियो की लडकियाँ और बच्चे एक साथ सब कमरो से निकल पडते, उनके पाँव से उडी धूल आदमी के कद तक उठ आती और फिर निर्जनता और शान्ति। सुनामा अपने कमरे की ओर लौटती, वैसे ही

अनुभव करती जैसे मंज़िल पर पहुँच कंधे से बोझ उतारकर मज़दूर करता है। छुट्टियों के पौने दो मास में बच्चों के पाँव से त्राण पा और चौमासे की वर्षा से पनपकर अहाते के लान मख़मली हरियाली से पुरे हुए थे। विशाल अहाते के एक ओर बने क्वाटरों में दो चपरासियों, एक माली और एक महरे के अतिरिक्त कोई न था।

स्कूल के बंगले में ही पिछवाड़े की ओर उसका कमरा था। आरम्भ में कमरे को सुनामा ने अपने विशेष ढंग और रुचि से सजाया था। अब कमरे के आयोजन की नवीनता समाप्त हो चुकी थी परन्तु उसका अपना व्यक्तित्व उसमें समा गया था। अभ्यास से वह उसके लिए उसी प्रकार सुविधाजनक बन चुका था जैसे किसी वस्तु के लिए बनाई गई डिबिया में उसका स्थान हो।

बी० टी० परीक्षा पास कर चौदह मास पूर्व सुनामा ने हिन्दू गर्ल्स स्कूल में मुख्याध्यापिका का काम करना स्वीकार किया था। उस समय भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा पर जापानी आक्रमण के कारण पश्चिम की ओर भाग आये लोगों के कारण युक्त प्रान्त के नगरों में खाली पड़े गोदाम और अस्तबल भी मकान करार दिये जाकर किराये पर उठ चुके थे। स्कूल कमेटी को सुनामा की आवश्यकता थी। कमेटी ने उसे आश्वासन दिया—यदि मकान का प्रबन्ध करने में आपको कठिनाई होगी तो फिलहाल स्कूल की इमारत में ही निर्वाह योग्य स्थान का प्रबन्ध आपके लिए कर दिया जायगा। सुविधा होने पर आप अपने लिए अलग मकान का प्रबन्ध कर सकेंगी।

स्कूल की इमारत में निर्वाह योग्य कोठरी पाकर गुज़ारा करने का विचार सुनामा के लिए उत्साह जनक न था। परन्तु वह ससुराल से जान बचाने के लिये कहीं भी शरण पा सकने के लिए व्याकुल थी। वैधव्य के पश्चात् किसी तरह तीन बरस आगरे में बिता ससुराल से छुटकारा पाने के लिए ही उसने ट्रेनिंग कालेज में भरती हो इलाहाबाद मायके

में रहने की आयोजना की थी। दो वर्ष तक मायके में रहते समय जाने कितनी वेर उसके व्याकुल प्राण अवरुद्ध निश्वासों में आर्तनाद कर उटे—एक वेर मायके के लिए बेगानी हो जाने पर स्त्री के लिए फिर मायका अपना नहीं हो सकता, जैसे वृक्ष से एक वेर टूट गया फल फिर से उसमें नहीं लग सकता। और ससुराल में अव उसके लिए क्या शेष था ? ससुराल से उसके अधिकार और प्रयोजन का सम्बन्ध टूट चुका था, जैसे वेल से फल को मिलाये रहनेवाली टहनी टूट जाने पर फल खेत में पडा रहने से केवल सडता है, बढता नहीं।

वैधव्य के आघात से तीन वर्ष तक मानसिक मृत्यु की अवस्था में रह और मृत्यु की कामना कर भी जब वह मर न सकी तो यथार्थ की उपेक्षा से परास्त हो उसने जीवित रहने की ओर ध्यान दिया। वी० टी० की पढ़ाई इसी निश्चय का फल थी। पढ़ाई समाप्त कर उसी पुराने संसार में, पुराने शरीर से ही उसने नयी भावना ले प्रवेश किया।

सुनामा का संसार पारस्परिक विरोधों से भरा था। जैसे बिजली का मोटर स्थिर रहकर भी अत्यन्त गतिशील होता है ! 'हां' के रूप में प्रवृत्ति और 'न' के रूप में संस्कार बिजली के घन (पाज़िटिव) और ऋण (नेगेटिव) तारों की भाँति उसके मस्तिष्क में विचारों के पहिये को अत्यन्त तीव्र गति से घुमाये रहते। जैसे बिजली का मोटर स्वयं स्थिर रहकर भी अपने प्रभाव से दूसरी वस्तुओ को गतिमान कर देता है, वैसे ही सुनामा का प्रभाव उसके चारों ओर होता। इच्छा न होने पर भी, उसके आशंकित रहने पर भी आदर और प्रशंसा का एक वातावरण उसके चारों ओर कुहासे के रूप में उठ खडा होता और फिर अपवाद के ओस की बूँदों के रूप में जमकर अवसाद और त्रास उत्पन्न करने लगता। यह विरोध उसके रूप और वास्तविक स्थिति में भी था। अव्यय यौवन की स्फूर्ति सौम्यता से नियन्त्रित होकर भी अंगों पर लहराती थी। उसकी सादगी सुरुचि से परिष्कृत हो शृङ्गार से अधिक

अहाता तारों की छॉव में ही बुहार रही थी। जमीन छूकर बूलो ने उसे सलाम और आसीस दी। सुनामा को मास्टरनी जान कर भी वह उसे 'रानी साहिबा' कहकर सम्बोधन करती थी। यह उसके व्यक्तिगत आदर-अनुराग की अभिव्यक्ति थी। ओस से बैठी धूल पर झाड़ू से लहरें बनाती बूलो पीछे की ओर हटती जा रही थी।

शीतल वायु से सुनामा ने स्फूर्ति पाई, पक्षियों की प्रथम चहचहा-हट सुन उसकी दृष्टि आकाश की ओर गयी। आकाश निर्मल था। साड़ियाँ धोई जा सकेंगी! और कितनी ही ऐसी ही बातें सहसा उसके मस्तिष्क में फिर गयी।

सिर धो भीगे केश पीठ पर फैलाये जब सुनामा गुसलखाने से निकली, आकाश में मेघ घिर आये थे। एक निराशा-सी अनुभव की। नौकर चाय-नाश्ता ला रहा है, इस प्रतीक्षा में वह बराम्दे में कुर्सी पर बैठ गई। यूरोप के युद्ध के कारण कुछ बेबीवूल (बच्चों के लिए ऊन) विशेष कठिनाई से प्राप्त की हुई थी। बहन के नये बच्चे के लिए उस ऊन का अधबुना स्वेटर सिलाइयों पर ऊँगलियों में था।

सामने से बूढ़ा माली टटके ताज़े फूलों के दो गुलदस्ते दोनो हाथों में लिये आता दिखाई दिया। माली को देख एक हल्की मुसकान सुनामा के मुख पर आ जाती थी। चोटी से एडी तक उसकी हर बात में विशेषता थी। बुढ़ापे की ढिलाई के बावजूद ऊँचा और चौडा कद, खूब खुला सीना, रूखे बडे-बडे हाथ पॉव। दॉये घुटने में कुछ लॅगडा-हट होने से वह धड को पीछे फेंककर चलता। चिकनी चॉद के ऊसर पर कहीं-कही सूखे कॉस की फुनगियों की तरह श्वेत केश थे। सिर वैज्ञानिको और दार्शनिकों की भॉति बडा। माथे पर गहन उत्तर-दायित्व के बोझ से सदा ही त्योरियाँ बनी रहतीं। चेहरा ज़ंग लगे लोहे की भाँति गेरुआ झलक लिये काला। चौडे चेहरे पर लम्बी नाक के नीचे बिलकुल श्वेत तराशी हुई लम्बी-मूँछे, छतरी की गोलाइयों जैसी

ठोडी की ओर घूमी हुई। बात करते समय लंगडाहट के कारण धड़ का बोझ तौलने के लिए रीढ़ पीछे झुकने से सीना और तन जाता और उस पर बार-बार मूँछों पर हाथ फेरते रहना। चौड़े कंधों पर रेलवे के पाइण्टमैन का नीली ज़ीन का कुरता यों पडा रहता जैसे दसहरे के रावण के शरीर पर काग़ज़ के कपड़े। नीचे खुदरंग हो गई धोती का फेंटा घुटने तक कसा हुआ।

माली का नाम न पुकारा जाता था। मेहतरानी से ले हेड मास्टरनी तक सब आयु के सम्मान से उन्हें 'बुढ़ौ' पुकारते थे। इस सम्मान के कारण बुढ़ौ का मिज़ाज़ और तुनक था। युद्ध की मँहगाई के कारण दूसरे बंगलों में माली २५)-३०) पा रहे थे, परन्तु बुढ़ौ अब भी १६) पर जमे थे। इसमें से भी ४) सुनामा की सिफ़ारिश से तरक्की का फल था। बुढ़ौ की इस कृपा के परिणामस्वरूप स्कूल पर उनका अधिकार भी कम न था। दिन में दो एक बेर छोड़ जाने की धमकी दे देते। सुनामा को सुनता पाते तो कहते, अरे जानकार मालिन को काम की क्या कमी है? 'गन फटरी' (गन फैक्टरी) में माली ४०)-५०) पा रहे हैं। हुज़ूर बीबी जी के कदमों की बदौलत पड़े हैं।'

स्कूल के चपरासी कन्हाई और लखन, महरा और मेहतरानी बुढ़ौ से चुटकी लेने से बाज़ न आते—'बुढ़ौ लाम पर काहे नहीं चले जाते। अब बूढे भी भरती हो रहे हैं। फौज में बूढ़ों को दूध-भात मिलता है।'

बुढ़ौ हाथ में खुरपी साधे तन जाते—'हम सब का खेद देऊब! मुला इस्कूल के लिये आदमिन की कमी नहीं है बीबी जी के इकबाल से!' उनकी वह अदा सेना को हुकुम देते कमाण्डिंग आफ़िसर से कम न होती। सुनामा यह सब सुनती और उसके अन्तरतम से आत्मीयता की गुदगुदी उठ आती! उसके मुँदे पतले ओठों पर आ जाता—'वॉन हिण्डनबर्ग!'

स्कूल के सेक्रेटरी, सेक्रेटरियेट के अकाउण्टेण्ट मिस्टर भटनागर ने

एक दिन बुढौ के तनकर सलाम करने के जवाब में मुस्कराहट दबाकर उत्तर दिया था—'थैंक्यू वॉन हिण्डनबर्ग!' उस स्मृति से सुनामा के ओठों पर बार-बार मुसकान आ जाती।

बुढ़ौ सुनामा के कमरे में नित्य ताज़े फूल लगा जाते थे। यह फूल लगाना सुनामा के पद के विचार नहीं, बुढौ के अपने अधिकार से था। यों कोई अध्यापिका केशों में फूल खोसने के लिये किसी फूल की ओर हाथ बढ़ाये तो वे एक पहर बड़बडाते रहते। परन्तु सुनामा के फूलदान के लिये वे अपने भाईचारे के नाते, जाने कहाँ-कहाँ से नायाब फूल लाकर हुजूर बीवी जी के यहाँ सजा देते। फूलदान में फूल न अटने पर लोटा गिलास जो मिल जाता, फूलदान बन जाता।

बुढ़ौ का फूल सजाने का कायदा सुनामा की आधुनिक सुरुचि के अनुकूल न था। आरम्भ में दो एक बेर उसने बुढौ के लगाये फूलों को उठा ढंग से लगा दिया—गुलाब एक मे, पिटूनिया दूसरे फूलदान मे, लम्बी-लम्बी टहनियाँ स्वाभाविक गति से बलखाती हुई और फैली हुई। परन्तु बुढ़ौ ने फूलदान में सब फूल एक साथ सटा देने के अपने ढंग मे परिवर्तन की आवश्यकता न समझी। एक दिन सुबह एक फूलदान खाली देख बुढ़ौ ने क्रुद्ध मुद्रा में पहाडी नौकर तेजू को सम्बोधन किया—'ए! ए फूल को उचासिस रहा?'

इस डॉट से सुनामा का मन पुलक उठा। बुढ़ौ की पीठ पीछे से ओठों पर ऊँगली रख उसने पहाडी नौकर को चुप रहने का संकेत कर दिया। वे फूल स्वयं सुनामा ने ही मिलने आये एक सज्जन के बालक को थमा दिये थे। तब से वॉन हिण्डनबर्ग के हाथो सजाये गये उन फूलदानों में गुलाब के साथ गेदा और सूरजमुखी विश्राम करते हुए शोभा बढ़ाते रहते और सुनामा को वह खटकता भी नही।

चौदह मास के संक्षिप्त समय मे ही बुढ़ौ और सुनामा का सम्बन्ध गूढ़ कर देनेवाली अनेक घटनायें हो गयीं। पूस का रोमांचकारी शीत

बुढौ एक पुराने सूती कम्बल में काट रहे थे। उनकी फैली हुई गर्वित विशाल देह सोंठ की तरह सिकुड रही थी। सुनामा की दृष्टि बेर-बेर उस ओर जाती पर कुछ कह न पाती। बहुत साहसकर एक दिन बोली—'बुढौ इस बरस बडा जाड़ा है।'

'क्या बताई हुजूर, ऐसा जाड़ा पचपन बरस की उमिर में नहीं देखा।'–बुढ़ौ ने समर्थन किया।

'एक कम्बल है, बुढौ। भाई, ओढ़ा हुआ है। ऐसे ही धरा है। काम आ सके तो·· ···· '–वह चुप रह गयी।

'अरे हुजूर का ओढ़े-पहरे में क्या ?'—एतराज अस्वीकार करने के लिए मूंड हिलाते हुए बुढ़ौ ने पाँव बदला।

सुनामा तुरन्त भीतर गयी और कम्बल लाकर बुढ़ौ की बाँह पर रख दिया। बुढ़ौ कुछ बोल नहीं पाये। और फिर तीन दिन बाद बुढौ को एक चीथड़े से कान बाँधे देख उसने एक तौलिया उनकी ओर बढा दिया।

स्कूल के पिछवाडे बुढौ के अपने हाथ से लगाये कटहल के पेड में पहला फल लगा था। बुढ़ौ सुबह शाम और दिन भर मे तीन-चार बेर उसे देख लेते। किसी को सुनता पाते तो हाथ की मुट्ठी में खुरपी भींच कर खबरदार कर देते—'जो एका हाथ लगाई हम ओका हाथ काट डारी !'

छोटा चपरासी चुटकी लेता—'फलां-फलां आदमी कटहल की ओर देख रहे थे ''। भई मज़ा है तो नरम-नरम कटहल खाने में ! क्यों कन्हाई दादा, कटहल में क्या मसाला पडता है ?'

बुढौ बौखला जाते और हाथ, गोड और सिर काटने की ललकार प्रायः सुनामा के कान में पडती रहती। वह मुसकान से ओठ दबा कर रह जाती।

बुढ़ौ प्रायः ही उस वृक्ष के वंश का चर्चा करते, बर्दवान के असली

कटहल का बीज है । इसका फल बीस-पचीस सेर से कम न होगा । परन्तु बुढ़ौ अपनी आशका दमन न कर पाये । फल प्राय· सेर भर ही हो पाया था कि एक सुबह दोनों हाथो मे फल थामे उसे उन्होंने हुजूर बीबी जी के सामने पेश कर दिया ।

सुनामा ने सोचा, जाने इतने दिन बुढौ ने कैसे सब्र किया होगा ? बोली—'हाय, अभी से काहे तोड लिया ? बढने देते !'

बुढ़ौ ने समझाया—'बुरे लोगन का क्या ठिकाना ? पहला फल चोरी न जाया चाही । इससे पेड कनिया जात है ।'

'बडा बढ़िया कटहल है, बुढौ । तुम अपने यहाँ बनाओ न !'

अपना भारी सिर हिला दुरुस्त पाँव पर धड को तौल बुढौ ने गद्गद स्वर मे उत्तर दिया—'ऐसा कैसे हो सकत है, हुजूर । हम तो आप ही के लिए' · · · और कुछ वे कह न पाये ।

उस सन्ध्या सुनामा ने स्वयं चौके में जा कटहल बनाया और बुढौ की ज्याफ़त हुई । कटहल की तरकारी सब लोगों में बाँटी गयी ।

देश मे जैसे अन्न का अकाल पडा, उससे भयंकर स्थिति हो गयी कपडे की । वस्त्र के अभाव में लाज ढाँकने में असमर्थ हो भले घरो की स्त्रियों के आत्महत्या करने और स्कूल की लड़कियों के परीक्षा देने न जा सकने के समाचार पत्रो मे छपने लगे । सुनामा भी सफ़ेद वायल की धोतियो के लिये तरस गयी । गरमी और बरसात की उमस में भी रेशमी साडियाँ निकाल कर पहननी पड रही थी । उन साडियो के पहरने में झेप भी होती, परन्तु लाचारी थी । सुनामा ने साड़ियो की ज़री किनारी छुटा, जहाँ तक बना, सादा बना लिया था ।

बुढौ अख़बार और ब्लैक-मार्केट कुछ नहीं जानते थे । इतना जानते थे कि धोती कहीं नहीं मिलती । धोती में चिन्दी और गाँठ लगते-लगते वह गाँठ और चिन्दी सहारने लायक नहीं रही । सीधे हुजूर बीबी जी से तो नही परन्तु, उन्हें कमरे के भीतर जान, पहाडी नौकर तेजू

और चपरासी लखन को सुनाकर बुढ़ौ बोले—'अब बीबी जी हम का धोती न दे है तो हम उनका धोती उठा लेबे !'

लखन ने दुचकारा दिया—'बुढ़ौ रेशमी साडी पहरिहो हो ?'

सुनामा भीतर सन्ध्या की चाय पी पान लगा रही थी। ओठों पर मुसकराहट आ गयी। पान मुँह में रख वह बाहर आयी, बोली—'बुढ़ौ क्या करें, मर्दानी धोती तो है नहीं। चौड़े किनारे की पहरोगे ?

बुढ़ौ हाथ मे खुरपी सम्भाले लंगडाते चले जा रहे थे। पलट कर नही देखा, कहते गये—'तौ फिर हम का करी ?'

× × ×

दुर्गा पूजा की छुट्टियों के पहले दिन प्रातः फूलदानो में फूल सजा बुढ़ौ सुनामा के सामने आ खडे हुए। स्कूल के नौकरो से सुनामा सिर नही ढँकती थी, रातदिन का साथ था। परन्तु बुढ़ौ को सामने खडा देख किसी संस्कारवश साडी का आँचल भीगे केशों पर रख लिया।

बुढ़ौ सिर झुकाये काठ सी खुश्क उँगलियों को परस्पर घिसते हुए बोले—'हुजूर बीबी जी, हमहु दिहात जाइब। हमहु का दुई हपता की छुट्टी मिले।'

'काहे बुढ़ौ, क्या करोगे जाकर ?' सुनामा ने प्रभात के स्नान की ताज़गी लिये अपने विशाल नेत्र बुढ़ौ की ओर उठा कर पूछा।

सही पाँव पर अपना सीना तौल बुढ़ौ ने अपने पीले नेत्र छत की ओर उठा लिये—'हुजूर, लखन कहित है आपहू ईलाहाबाद जाय रही है। हमका हियाँ नीक नहीं लागत !'

सुनामा के हृदय का रक्त चेहरे पर उछल आया—'नहीं बुढ़ौ, हम कहाँ जा रही है ·····? हम तो यही है।' उसके नेत्र हाथ की बुनाई पर झुक गये।'

बुढ़ौ ने पाँव बदला और आश्वासन से उत्तर दिया—'तौ फिर ठीक है, हुजूर। ···अफ़सर न रहे तो हम का नीक नहीं लागत। गरमी

की छुट्टी में आपहु चली गई रहीं। हमका बहुत अकरासों लागत रहा।'

सुनामा की दृष्टि बुनाई मे और गहरी गड गयी। उसने बात बदली—'बुढ़ौ, जाडे के नये फूल नहीं लगाये ?'

× × ×

सुनामा इलाहाबाद और आगरा पीछे छोड आयी थी। परन्तु प्राणों के पीछे लगा जीवन का द्वन्द्व साथ ही आया। सेक्रेटरी साहब आदर से पेश आते थे और फिर बुरा मान गये। उसने मन मे कहा—मैं क्या करूँ ? मेरी बला से ?'

सेक्रेटरी मिस्टर भटनागर की नाराज़गी का कारण छिपा न था। प्रबन्ध कमेटी के प्रधान लाला विशननारायण के लडके के विवाह की पार्टी मे सुनामा गयी थी। सेक्रेटरी साहब ने भी उसे अपने यहाँ होली की पार्टी में निमन्त्रित किया। वह जा न सकी। तब से दो-तीन बच्चों के संरक्षको ने स्कूल में प्रबन्ध की ख़राबी की शिकायते लिख भेजी। पहले सुनामा झुंझला कर रह गयी और फिर झॅपने लगी।

दुर्गापूजा की छुट्टियो के पहले ही, रविवार की सन्ध्या को प्रबन्ध कमेठी की बैठक हुई। कमेटी मे प्रश्न आया कि पिछले सप्ताह 'अ' और 'ब' श्रेणी की पढ़ाई बिलकुल नही हुई। वर्षा के कारण बच्चों को तीन दफे घर लौट जाना पडा।

सुनामा ने उत्तर दिया—'उनके लिये इमारत मे स्थान नही है। सब बच्चे किसी एक कमरे में बैठ नही पाते। मौसम साफ रहने पर तो बच्चों को वृक्षों के नीचे बैठाया जा सकता है। वर्षा के समय उपाय नही। इन श्रेणियो मे अधिक बच्चे न लिये जायॅ तो अच्छा है।'

कमेटी के दूसरे मेम्बरों को सम्बोधनकर सेक्रेटरी साहब बोले—'इमारत के दो कमरे हेडमिस्ट्रेस के पास हैं। यह कमरे कुछ समय के लिए दिये गये थे कि वे अपने लिये मकान का प्रबन्ध कर ले। अब एक वर्ष से अधिक समय हो गया है।'

'हेडमिस्ट्रेस को दफ़्तर में बुलाओ !'—भटनागर साहब ने हुकुम दिया।

सन्देश पा सुनामा मुसी हुई साडी बदल, सिर में कंघी कर, कन्हाई से रजिस्टर उठवा दफ़्तर की ओर चली। बग़ल के बरामदे से सामने की ओर घूमते ही उसके कदम उठ न सके :—

सेक्रेटरी साहब के सामने कंधे पर पहरा देने की लम्बी लाठी लिये बुढ़ौ अपने सही पाँव पर उचक रहे थे। दाये हाथ की उँगली दिखाकर वे ललकार रहे थे—'ये मुटरी-उटरी सब चूर कर देब। ई हाता में कदम रखियो ना ! सब अपसरी झार देब ···!'

सेक्रेटरी साहब का चेहरा बिलकुल रक्तहीन था। आँखे भय और विस्मय से फैल रही थीं। सुनामा को स्वयं काठ मार गया। कन्हाई तुरंत आगे बढ़ा। भटनागर साहब को आड में ले बुढौ की लाठी उसने अपने हाथ में ले ली। लखन और मेहरा भी माजरा देख आ पहुंचे।

विपत्ति से रक्षा का श्वास ले सुनामा आगे बढी और बड़ी कठिनता से कह पायी—'क्या बात ?'

बुढौ बाहें फेंकते, बकते, लंगडाहट से उचकते अपनी कोठरी की ओर चले गये।

निर्भय हो सेक्रेटरी साहब ने अंग्रेज़ी में सुनामा को सम्बोधन किया—'क्या यह आदमी पागल है ? पहले भी कभी ऐसा व्यवहार किया है ?'

—'नहीं तो ! कभी देखा नहीं ··· ···। किसी ने कहा भी नहीं। गम्भीर और जिम्मेवार आदमी था।'

सेक्रेटरी साहब पतलून की जेब में हाथ डाले अपने जूतों की नोक की ओर देखते रहे। दृष्टि झुकाये ही बोले—'हो सकता है ···लेकिन बडी खतरनाक बात है। लडकियो और बच्चों का मामला है। आप इसे फौरन डिसमिस करके अहाते से बाहर निकलवा दीजिये।' उन्होंने कन्हाई की ओर देखा—'सुना ?'

अपनी बात चपरासियों और मेहरे को समझाने के के लिये भटनागर साहब ने हिन्दी में दोहराया—'खतरे को रखना ठीक नहीं। अभी निकाल दीजिये। ज़रूरत हो, थाने मे रिपोर्ट कर पुलिस बुलवा लीजिये। मै भी थाने मे फोन कर दूँगा।' रजिस्टर देखने का उत्साह सेक्रेटरी साहिब को न रहा। मोटर मे बैठ वे तुरंत लौट गये।

सुनामा के पॉव कॉप रहे थे। दफ्तर में जा कुर्सी पर बैठ गयी। कोहनी मेज़ पर टिकी थी और हथेली पर ठोडी। दोनों चपरासी आज्ञा की प्रतीक्षा में पीछे खडे थे। सुनामा का रोम-रोम कॉप रहा था। मुख से शब्द निकलना असम्भव था। पच्चीस मिनट गुज़र गये।

कन्हाई बोला—'हुजूर क्या हुकुम है ?'

सुनाम निश्चय न कर पाई थी, वह माली को निकाल दे या स्वयं चली जाय ? उस कठिन द्वन्द्व मे भी आतंकित कल्पना दूर देश घूम आयी—कहीं दूर, हरेभरे स्वतन्त्र दिहात मे, वह और बुढ़ौ ·! बुढौ खेत सम्भालने जायॅ और वह रोटी सेक कर प्रतीक्षा करे !

कन्हाई के टोकने से सुनामा ने अपनी निर्बलता झुॅझलाहट में छिपाई—'क्या है ?'

'हुजूर माली के वास्ते · सेक्टेरी साहब कहेन !

सुनामा हिल न सकी। जान पडा, सिर दरद से फट रहा है। न जाने कितने मिनट बीत गये। चपरासी और मेहरा खडे रहे। थककर अनेक वेर उन लोगो ने पॉव बदले, जम्हाई ली। सुनामा की तन्द्रा भंग न हुई। कन्हाई ने फिर टोका—'हुजूर !'

सिर दर्द से सुनामा के नेत्र बिलकुल रक्त हो गये थे। पूर्ण संयम से अपने आपको वश कर उसने कठोर स्वर में उत्तर दिया—'क्यो बार-बार सिर खाते हो ! कह तो दिया एक बार ! · जाओ निकाल दो !'

'हुजूर उसकी तनख़ा '—कन्हाई ने साहस किया।

झपाटे से मेज का ड्राज़ खींच सुनामा ने दस-दस के दो नोट निकाल फ़र्श पर फेंक दिये और सब को धमकाया—'जाओ यहाँ से !'

सिर आँचल में लपेट उसने मेज़ पर रख दिया। जान न पड़ा कितना समय बीत गया। वैसी ही मूर्छा जैसी वैधव्य के प्रथम आघात से आगयी थी। सुनाई दिया—'हुजूर, माली नमस्ते करने को खड़े हैं।' कुछ ठीक से समझ भी न पायी और आँसू से भीगे आँचल में लिपटा सिर उठा सकना भी सम्भव न था। भीतर दबी आग भड़क उठी—'जाओ यहाँ से !'

कुछ मिनट बाद सुनामा संभली। रुलाई के वेग ने उसे अवश कर दिया। अविरल आँसुओं को रोकना सम्भव न था और आँसू भरा मुख स्कूल के नौकरों को दिखाना भी सम्भव न था। परन्तु बुढौ जा रहे थे·····।

रह न सकी। सिर उठाकर खिड़की से झाँका। आँसू भरी पलकों में से दिखाई दिया—वही नीला कुरता पहरे, बगल में हलका बुगचा दबाये, लाठी टेकते, लंगडाते बुढौ फाटक से निकल रहे थे। सुनामा का मन हुआ चीख़ उठे—'बुढ़ौ, ठहरो !'

परन्तु मुख्याध्यापिका के संयम ने ओठ खुलने न दिये। उसके हृदय ने आह भरी—वॉन हिण्डनबर्ग ! और आँसू भरी पलकों के सामने लंगडे बुढौ वॉन हिण्डनबर्ग से कहीं अधिक गरिमामय जान पड़े ·· वे सुनामा के हृदय की कितनी गरिमा लिये चले जा रहे थे।

७

भाग्य चक्र—

विधाता के यहाँ भाग्य के कारखाने में संख्यातीत प्राणियो के भाग्य-चक्र अपनी दाँतें एक दूसरे मे फँसा अनेक दिशाओ मे चला करते है। कौन चक्र किस चक्र को कब और क्यों किस ओर चला कर प्राणियो को इस संसार में ऊपर, नीचे, दाँयें, बाँये फेंक देता है; कब किसी को ऊपर उठा देता है या किसी की अस्थि-मज्जा कुचल देता हे, कहना कठिन है। प्राणी बेचारा कुछ जान या समझ भी नही पाता।

नन्दनसिंह कलकत्ता मे भवानीपुर के समीप काचीपाडा मुहल्ले में, बंगाली परिवारो से भरे एक बडे मकान मे, दुमजिले की एक कोठरी और बराम्दा किराये पर लेकर रहता था। कलकत्ते मे पञ्जाबियो के प्रति विशेष श्रद्धा नहीं है; उन्हें बल्कि कुछ आशङ्का से ही देखा जाता है। पर नन्दनसिंह की बात दूसरी थी, या भाग्य के कुछ चक्रो को यों ही घूमना था।

हुआ यह कि मुहल्ले मे एक पान-बीडी की दूकान था। पनवाडी की असावधानी से या उसका भाग्यचक्र य। घूम गया; गाहको को बीडी सुलगाने की सुविधा के लिये, दुकान की काठ की छत से सुलगा कर लटकाई नारियल की रस्सी से किसी तरह आग लग गई। अगल-बगल के दो मकानों को लपेट कर आग ने विराट रूप धारण कर लिया।

आगके विभ्राट से बँगाली भद्र परिवारां में 'सर्वनाश होलो!' का

चीत्कार मच गया। समीप ही बढ़ई का काम करने वाले और टैक्सी और बस के ड्राइवर पञ्जाबी लोग कोठरियों में रहते थे। चीत्कार के उस वीभत्स काण्ड में पञ्जाबियों ने दौड़ कर आग बुझा दी। आग का संकट टल जाने पर उसकी चर्चा करते समय बंगाली मोशाय ने कृतज्ञता, सहृदयता और विस्मय से आँखे फैला कर स्वीकार किया—'पाञ्जाबीरा निश्चई बीर पुरुष।'

नन्दनसिंह कहीं कोई जगह न मिल सकने के कारण अपने गाँव के पिरथीसिंह ड्राइवर की कोठरी में ही डेरा डाले था। अग्नि से युद्ध में उसने विशेष साहस दिखाया था। इसलिये उसकी चर्चा भी विशेष रूप से हुई—'नन्दनसिंह कि वास्तवेई नन्दन काननेर सिंह!'

इस घटना के बाद, अनेक बंगाली परिवारो से बसे उस बडे मकान में उत्तर की ओर रहनेवाले, श्रीयुत विपिन घोष मोशाय ने अपने भाग की सब से उत्तरवाली कोठरी और बरान्दा नन्दनसिंह को बारह रुपये माहवार में किराये पर दे उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। मकान का यह लगभग चौथाई से कम भाग आधे मकान के किराये में पा कर भी नन्दनसिंह को सहायता ही मिली।

मैट्रिक तक पढ़ने के बाद रोज़ी की खोज में नन्दनसिंह कलकत्ता पहुँचा था। वह शहर और मुफस्सिल में लुधियाने की बनी स्वदेशी वस्तुओं का व्यापार करता था। भवानीपुर के पञ्जाबियो में रहने से बंगाल मे आ कर भी वह बगालियों से दूर रहा। बगाल को जानने की इच्छा उसकी अपूर्ण ही रही। आग की दुर्घटना के चक्र ने उसके भाग्य को अवसर दिया। बंगाली जीवन की झलक उसे मिलने लगी।

कलकत्ते में अशिक्षित पञ्जाबी भी बंगला बोल और समझ लेते है। बंगला पढ़ना सीख लेने पर नन्दनसिंह की नवयुवक कल्पना रवीन्द्र, शरत और सौरीन्द्र की आख्यायिकाओ का नायक बनने के स्वप्न देखने लगी। बंगाल के प्रति अनुराग से उसकी भावना भीग गई। घी

निचुडते 'कढ़ाह-प्रसाद' (हलवे) की अपेक्षा चाशनी मे तैरते रसगुल्ले उसे अधिक लुभाने लगे। छाछ के छन्ने (कटोरे) से अधिक रुचिकर 'चायेर काप' (चाय का प्याला) हो गया। पञ्जाब के सपाट मैदानो में हू-हू करती लूह और घास पर जम जानेवाले पाले की पपडी वीभत्स जान पडने लगी और निरंतर सुर्मई मेघो से छाया आकाश और दक्खिन वायु उसे सुहाने लगे। स्वस्थ, सबल, सुडौल, सिलवार और कुर्ता पहने, सिर पर ओढनी की गेडुली पर मटका टिकाये पञ्जाबी देहात की, सूर्य के ताप से तपा गेहुँआ रंग लिये पंजाबी स्त्रियाँ उजड्ड जान पडने लगी। कछुए की तरह अपने ही भीतर सिमिट जाने के लिये यत्नशील, साँवली, नमकीन, चपलाक्षी बंगाली ललनाओ के महावर रचे चरण उसका मन व्याकुल करने लगे।

× × ×

अमला की आयु का प्रश्न विवादास्पद था। म्युनिसिपैलिटी का खाता देखने से उसकी आयु सत्रह से ऊपर होती। परन्तु दूरदर्शी बगाली गृहस्थ ने कन्या के विवाह में स्वाभाविक आशंका के विचार से, लडकी की आयु गणना में सावधानी कर, अभी तक उसे पन्द्रह से बढने न दिया। कलकत्ते के अभिज्ञ वातावरण मे समझ-बूझ और शरीर की उठान में अमला पञ्जाब की बीस बरस की दिहातिन को बहुत कुछ सिखा सकती थी। माँ ने बहुत पहले ही दूसरे लोक मे स्थान पा लिया था। विमाता के व्यवहार मे प्रकट विरोध की तीव्रता न थी तो दूसरे की सन्तान के प्रति ममता की चौकसी भी न थी। इस उपेक्षा का अर्थ अमला के लिये हरदम की रोक-टोक और नोक-झोंक से मुक्ति था। माँ प्राय. नीचे के खण्ड मे रहती और अमला ऊपर।

दुमञ्जिले पर अमला की कोठरी से आँगन पार नन्दनसिंह की कोठरी का दरवाज़ा दिखाई देता था। आने-जाने के लिये नही परन्तु दृष्टि के लिये राह थी। दोपहर मे सिलाई की मैशीन चलाते समय

गुनगुनाते हुए या कोई दूसरा काम करते समय अमला उस ओर देखती तो नन्दनसिंह प्राय: दिखाई देता। सुबह-शाम वह अपने सामान के नमूने की पेटी ले फेरी के लिये जाता और दोपहर को आराम करता। माँ नीचे रहती थीं, घोष बाबू दफ़्तर में। मन में कुभावना न होने पर भी नन्दनसिह की दृष्टि आँगन पार अमला की ओर बरबस जाना चाहती। यों शायद एक बेर देख लेने पर वह चाहे यत्न से न भी देखता परन्तु अपनी दृष्टि का प्रभाव अमला के व्यवहार में देख, देखने की इच्छा सार्थक हो उठी। नन्दनसिंह के मस्तिष्क में एक भारीपन सा आ गया और सीना जैसे कुछ फैल कर साँस की गहराई बढगई।

अमला नन्दनसिंह की दृष्टि से कुछ झुक और सिमट सी जाती परन्तु अपना स्थान छोड कर हट भी न पाती ; जैसे ··· ···जाल में पंजे फँस जाने पर बटेर छटपटा कर व्याकुल तो होता है पर उड नहीं सकता। यदि दोपहर में नन्दनसिंह मकान पर न रहता या उसकी ओर के किवाड बन्द रहते तो अमला को एक अभाव सा अनुभव होता और बेबसी का क्रोध सा भी। उस समय या तो अमला के हाथ से फर्श पर कोई वस्तु गिर कर आहट हो जाती या अपनी ओर के किवाडों को वह काफ़ी खटके से खोल या बन्द कर देती। ऐसा होने से नन्दनसिंह की ओर के किवाड खुल जाते।

आरम्भ में नन्दनसिंह अमला की कोठरी को ओर झाँकता तो भद्रता और आशंका के विचार से किवाडों को यों बंद करके कि वह देख तो ले पर दीखाई न दे। परन्तु उसने अनुभव किया कि दिखाई दिये बिना देखना निष्फल है। अमला का ढंग दूसरा था, वह देखती न थी केवल दिखाई दे जाती थी और ऐसे कि उसे नही मालूम कि वह दिखाई दे रही है।

प्रथम तो नन्दनसिंह के बंगाली न होने के कारण उसके प्रति भद्र-लोक की मर्यादा से संकोच और सम्मान की उतनी आवश्यकता न थी

और फिर आग की दुर्घटना के समय वह अमला और उसकी माँ की कीचड से लथपथ, विक्षिप्त अवस्था मे पानी की बाल्टियाँ ले-ले कर घर में सब जगह कूद-फाँद आया था। उनके मकान में आ बसने पर पिछली दुर्गापूजा के अवसर पर उसने अमला की माँ, अमला और बीनू, चीनू को गुजराती छाप की साडियाँ उपहार में भेंट की थीं। बीच में कुछ दिन के लिये गाँव जा लौटने पर उसने अपने देश द्वाबे का कुछ घी भी भेट किया था। इस सहृदयता की स्वीकृति में घोष बाबू भी प्राय: मछली का झोल बीनू-चीनू के हाथ उसे भिजवाते रहते।

अमला की विमाता स्वभाव से ही आत्मरत होने पर भी अपनी सन्तान के प्रति नन्दनसिह की उदारता देख उसे सुपुरुष मान चुकी थी। परायेपन की जगह पारिवारिक आत्मीयता ले चुकी थी। भाग्य के अदृश्य चक्र की दाँतों ने अमला को नन्दनसिंह के बहुत समीप ला खड़ा किया।

एक दिन आषाढ़ की दोपहरी में माँ नीचे ठंडे में सो रही थी। अमला हवा के विचार से दुमञ्जिले के बराम्दे में बैठी सिलाई कर रही थी। नन्दनसिंह लौटा न था। अमला क्षोभ अनुभव कर रही थी। नन्दनसिह के भाग का बराम्दा लोहे की छडों द्वारा शेष मकान के बराम्दे से अलग था। नन्दनसिह के आने पर उसने शिकायत की नज़र से एक बेर देख सिर झुका लिया।

माथे का पसीना पोछते हुए नन्दनसिंह ने मुस्करा कर बंगला में पूछा—'कैनो (क्यों) ?'

नन्दनसिहका बंगला बोलना उसके उच्चारण के कारण मज़ाक बन जाता था। बंगला पर नन्दनसिह का यह अत्याचार अमला को अत्यन्त मधुर लगता और क्रोध टिक न पाता। परन्तु क्रोध का अधिकार कायम रखने के लिये मुँह फुला, आँखे झुकाये ही अमला ने कहा—'एई ते भालो, आपनी बिये करे पञ्जाबी बऊ के निये

आशुन। आमरा गल्प-सल्प करबो ! ए रकम ऐकला बोशेर यन्त्रणा और सह्य हय ना !' (इससे तो अच्छा है कि ब्याह कर पंजाबी बहू ले आओ ! उसी से कुछ बात-चीत करेंगे। यों अकेले बैठे रहने की यन्त्रणा असह्य हो जाती है।)

नन्दनसिंह सहसा गम्भीर हो गया—'अमला, एई तोमार मुहब्बत ? शे आमि करते पारी ना ! आमार जन्ये तुमि शब किछु !'

अमला ने सिलाई की मशीन पर झुक होंठ दबा चुटकी ली—'केनो पंजाबी मेये तो बेश सुन्दरी ' फरशा-फरशा गायेर रंग' '' '' देह ओ बलिष्ठ ...... ! (क्यों; पंजाबी लड़कियाँ तो बहुत सुन्दर होतीं है। गोरा-गोरा रंग, बलिष्ठ शरीर !) नन्दनसिंह केवल गहरा साँस ले कर रह गया।

इस प्रकार मान-अभिनय से तीखी होती जाती प्रेम की मिठास भरी पीडा में, उस निकटता को भी असह्य दूरी अनुभव करते, कई दिन निकल गये। जैसे पिंजरे में बन्द पंछी से मुक्त पंछी प्रेम कर छटपटा रहा हो ! प्रेम की सार्थकता पिंजरे का द्वार खुले बिना कैसे हो ?

× × ×

एक दिन दोपहर को बराम्दे की सीखों के समीप दीवार से चिपक अमला ने अत्यन्त दुख भरे स्वर में नन्दनसिंह से पूछा—'मेरे मर जाने का समाचार सुन कर तुम क्या करोगे ?'

नन्दनसिंह के मुख से मुस्कराहट की रेखा उड गई। वह गम्भीर प्रश्नात्मक दृष्टि से अमला की ओर देखता रह गया। धोती की खूँट के धागे उँगलियों में बँटते हुए अमला ने कुछ हिन्दी-मिली बंगला में उत्तर दिया—'आजकल बाबा ब्याह की बात बहुत चलाते हैं। गाँव-देहात के एक अनजाने बूढ़े के हाथ पड जन्म भर कलपने से पहले ही मै शरीर पर केरोसिन तेल की बोतल उडेल जल मरूँगी। जन्म भर की पीडा से तो यह क्षण भर का दुख भला।'

अधीर स्वर में नन्दनसिंह ने पूछा—'क्या कहती हो अमला ?'

'कहती क्या हूँ'—अमला के आँसू बह आये—'बाबा को तो किसी प्रकार जाति की रक्षा करनी है—। और विमाता को पराये पेट की लडकी के लिये दो मुट्ठी भात भारी हो रहा है।'

नन्दनसिंह कुछ बोल न सका। मन का क्षोभ वश मे करने के लिये उसने लोहे की छडो को अपने हाथों की मुट्ठियों मे जकड लिया।

आँसू पोछ अमला बोली—'तुम्हे भी मैने केवल दुख ही दिया। कभी कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा कर देना।'

'अमला !'— लोहे की सीखों को और भी अधिक कठोरता से दबा कर नन्दनसिंह ने कहा—'क्या कह रही हो तुम ! मेरी जान रहते यह नहीं हो सकता। यहाँ मै बेबस हूँ। तुम बंगाली हो और मै पंजाबी। फिर भी जब तक गर्दन पर सिर है · समझी ! हमारे पंजाब देश में ऐसा कोई विचार नहीं चलता ·· समझीं !'

× × ×

खिदरपुर घाट पर लगे रंगून जानेवाले जहाज़ के डेक पर स्थान घेर लेने के लिये मुसाफिर सीढ़ियों पर धकापेल मचाये थे। नन्दनसिंह ने सीढ़ी पर पाँव रखा ही था कि उससे आगे, एक बडे ट्रङ्क पर स्टील का सूटकेस रखे कौशल से चढानेवाला कुली किसी तरह झटका खा गया। स्टील केस नन्दनसिंह के सिर पर आ गिरा।

इधर-उधर से लोग दौड पड़े। लहू-लुहान नन्दनसिंह को एक ओर लिटा दिया गया। उसके पीछे पंजाबी पोशाक में घूँघट निकाले एक जवान स्त्री खडी थी। वह स्त्री घबराहट में रो पडी।

घायल का पता जानने के लिये पुलिस ने उस पंजाबी वेशधारी युवती से हिन्दुस्तानी मे प्रश्न किया। कुछ देर केवल रोने के बाद उसने बंगला में उत्तर दिया कि वे लोग पंजाब देश के रहनेवाले है और बरमा जा रहे थे।

हिन्दुस्तानी न समझ कर बंगला बोलने वाली पंजाबी स्त्री के सम्बन्ध में पुलिस को सन्देह हो गया। ज़ख्मी नन्दनसिंह और अमला पुलिस की हिरासत में ले लिये गये। जहाज़ चला गया। अमला फूट-फूट कर रो रही थी। वह किसी का कुछ चुरा कर नहीं भाग रही थी। वह केवल मिट्टी का तेल सिर पर डाल कर जल मरने से बचना चाहती थी।

× × ×

काचीपाडा के अनेक बंगाली भद्रलोक घोष बाबू को साथ ले थाने में हाज़िर हुए। अनेक लोगों के समझाने पर बंगाली कोतवाल वसु महाशय ने दीन बंगाली भद्र समाज के सम्मान के प्रति करुणा कर घोष बाबू की अविवाहित युवती लडकी को बिना चौकसी घर में रखे रहने के लिये भर्त्सना की। पुलिस कोर्ट में जाने के बाद लडकी का विवाह असम्भव न कर देने के विचार से उन्होंने दयाकर मामला कागजों में दर्ज किये बिना ही छोड दिया।

परन्तु कम आयु की नाबालिग़ बच्ची को भगा कर ले जानेवाले पंजाबी को कलकत्ते में रहने देना सुरक्षित न था। उसपर अनेक अपराधो का सन्देह कर उसे कई दिन लाल बाजार की हवालात में रखा गया और पंजाब से भागा हुआ अपराधी होने के सन्देह से उसे हिरासत में ही शिनाख्त के लिये पंजाब भेज दिया गया।

× × ×

काचीपाडा के प्रौढ़ भद्र समाज ने दो सनातन सत्य पुनः स्वीकार किये ; एक तो पंजाबी प्रकृति से ही बदमाश होता है; दूसरा—जवान अविवाहित लडकी घर में रखना ज्वालामुखी पर निश्चिन्त सोने के समान है।

अमला का विवाह तुरन्त ही हो गया। विवाह के बाद वह मुफ़स्सिल में चली गई। विवाह के समय उसे पति के समीप बैठा जब शुभदृष्टि के लिये नव दम्पति को चादर की ओट कर एक दूसरे को देख लेने का अवसर दिया गया, वह आँखे खोल ही न पाई। अब पति के

दर्शन और स्पर्श के पश्चात् फिर केरोसिन तेल से स्नान कर दियासलाई की ज्वाला से माँग में सिन्दूर भर लेने की बात मन से आने लगी। परन्तु उसने मन को समझाया, जो भाग्य मे बदा है वह तो सहना ही होगा। वह काली माई से, मृत्युद्वारा दुखमय जीवन से त्राण पाने की प्रार्थना कर रह गई।

परन्तु अमला का भाग्यचक्र रुका नहीं। पाँचकौडी बाबू प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् तीन सन्तानों के पालन के लिये माता की आवश्यकता होने से कम दहेज पर भी घोष बाबू को कन्यादान के पुण्य का अवसर देने के लिये तैयार हो गये थे। परन्तु घोष बाबू उतना भी न कर सके। नकदी देना भाग्य से उनके बस का न था, इसलिये घर की जायदाद सोने का ठोस गहना दे कर ही उन्होने जामाता को सन्तुष्ट कर दिया था। पाँचकौडी बाबू वह गहना बेचने गये तो पर अमला के भाग्य से सोने का वह गहना केवल मोटा मुलम्मा निकल आया।

बाज़ार में मुलम्मे को खरा सोना बना कर बेचना सरकार की दृष्टि मे दण्डनीय अपराध है, परन्तु दहेज मे खोटा गहना देने के सम्बन्ध मे कोई कानून नही और न यह धोखा प्रमाणित हो जाने पर विवाह ही रद्द हो सकता है।

ससुर के धोखे की शिकायत करने कलकत्ते जा कर पाँचकौडी बाबू को मालूम हुआ कि धोखा केवल रकम के सम्बन्ध मे ही नही हुआ, घर से भागी लडकी उनसे ब्याह कर उनकी जाति भी नष्ट कर दी गई। ऐसे दगाबाज ससुर से बदला लेने की केवल एक ही राह थी। पाँचकौडी बाबू ने अमला को गर्दन पकड घर से निकाल दिया।

ससुर गृह में प्रवेश करते समय अमला का हृदय निराशा और दुख से फटा जा रहा था। उस घर से निकाली जाते समय यदि उसके प्राण शरीर से निकल जाते तो वह सौभाग्य समझती। पति के घर से निकाली जा कर अमला कितनी देर विमूढ हो घुटने पर

माथा टेके सडक किनारे पेड के नीचे बैठी रही। वह कुछ समझ न पा रही थी, कहाँ जाये ? जब वह अपनी इच्छा से घर छोड गई थी, उसे पकड लाने के लिये पुलिस दौडी चली आई। अब घर से निकाल दिये जाने पर घर में जगह दिलाने के लिये पुलिस की शक्ति सहायता के लिये न आई। सडक पर से गुजरने वाले फटी धोती के अवगुण्ठन में लिपटी, सडक किनारे बैठी युवती नारी को विस्मय, करुणा और रहस्य की दृष्टि से देख चले जाते परन्तु उस उलझन में फँसने के लिये कोई उससे कुछ पूछने न आया।

अँधेरा हो गया। अमला के विजडित मस्तिष्क और पथराई आँखो के सन्मुख सम्पूर्ण संसार एक भयंकर भूडोल से विचलित और छिन्न-भिन्न हो रहा था। परन्तु संसार उसकी चिन्ता न कर अपनी अनेक धुरियों पर समुचित रूप से घूमता जा रहा था। सडक पर से गुजरने वाले अनेक पथिक, अनेक प्रकार की गाडियाँ एक के बाद एक आ और जा रही थी। सम्मुख आधे फर्लांग पर, माथे पर लगी दैत्य की आँख से मील भर तक अंधकार को चीरती हुई, पृथ्वी को कँपाती हुई अनेक रेल गाडियाँ दुर्दम वेग और शक्ति से दौडी चली जा रहीं थीं। अमला के मस्तिष्क की जडता कुछ कम होने पर रेल की गडगडाहट ने ही उसका ध्यान आकर्षित किया। वह गाडी ही मृत्युद्वारा उसे शरण दे सकती थी।

शरण की खोज में अमला उठी और अवसाद की जडता में अपना मुख और सिर धोती के आँचल मे लपेट मर जाने के लिये रेल की लाइन पर जा लेटी।

उसे अनुभव हुआ, पृथ्वी काँपने लगी और फट कर उसे अपने गर्भ में शरण दे देगी। रेल की चीखें सुनाई दीं। अमला को अनुभव हुआ कि पहिया उसके ऊपर से गुजरा ही रहा है ···मुक्ति ···!

अनेक ठोकरें खा कर वह उठी। इंजन के माथे की आँख उसको अपने क्रोध से भस्म कर देना चाहती थी। पूछे जाने पर वह कुछ उत्तर

न दे सकी। लोग उसे बाँहों से थाम कर ले गये। उसे गाडी पर बैठा दिया गया। अन्त में वह लोहे के सींखचे जडी कोठरी में ताला लगाकर बन्द कर दी गई।

कुछ स्वस्थ होने पर अमला ने उत्तर दिया, वह मर जाने के लिये रेल की पटरी पर लेटी थी। इस पर मुकद्दमा चला। रेल की पटरी और इजन की शक्ति के इस दुरुपयोग के इरादे के लिये या आत्महत्या के प्रयत्न के लिये उसे डेढ बरस जेल की सजा दी गई। इस सज़ा ने शरण का रूप ले उसे घबराहट से मुक्ती देदी।

× × ×

जेल से छूटते समय अमला के के लिये संसार फिर शून्य था, परन्तु जेल मे नसीमा ने उसे बहुत कुछ समझा दिया था। और जानने न जानने मे उतना ही अन्तर है जितना होने और न होने में।

नसीमा पहले भी दो बार जेल काट चुकी थी। मूँडचिरे कञ्चन ने अपनी जान बचाने के लिये उसे दगा दे कोकीन के मामले में जेल भिजवा दिया था। दुनिया में कहीं जगह पाने की अमला की अबोध चिन्ता का उपहास कर नसीमा ने कहा—'अरे औरत की जवानी है तो उसके हाथ टकसाल है! · तेरी फिक्र करनेवाली दुनिया है! · ··· कोई दिन हमने भी 'सोनागाछी' में राज किये हैं बिटिया ?

× × ×

पन्द्रह बरस बाद।

अमलादेवी के दो मकान है। पुलिसवाले उसका नाम ले गाली दे कहते—'उस······के चक्कर में फँसी लौण्डिया का निस्तार नही। बीसियों लट्ठबन्द गुण्डे जिसकी मातहती में हो।'

मिस्सी से दाँतो की कोर रंगे, दाँये गाल मे पान दबाये, सरौते से सुपारी कतरती हुई, आँख दबा कर वह कितने ही लोगो के भाग्यचक्र दाँये बाँये चलाती रहती है।

८

पुरुष भगवान—

मंसूरी में यदि आपकी कोठी आम बाजार से दूर है तो बीसियों अहमतें होंगी ; पर एक आराम रहेगा, दर्शन करने और दर्शन देने के लिये आनेवालों से आप रक्षा पा सकेंगे। लेकिन जो लोग लम्बी सैर से सेहत सुधारने की आशा करते है, उनसे आप वहाॅ भी नहीं बच सकते।

दोपहर बीत चुकी थी। खिडकी से आती घाम में आराम कुर्सी पर लेटा शीपिनका नाटक The Modern Ethics (आधुनिक नैतिकता) पढ़ रहा था। अहाते में बिछी बजरी पर कदमों की आहट सुनाई दी ; कुत्ता भोंका ; पुकार आयी 'कहाॅ हो भाई ?' और फिर अपना नाम।

समझ गया, रामनाथ है। अपने सुखासन से ही उत्तर दिया—'आ जाओ !' और पृष्ठ समाप्त करने का यत्न करने लगा।

रामनाथ आ गया। समीप की कुर्सी पर बैठ, मार्ग की चढाई में आया सिर का पसीना सुखाने के लिये उसने अपनी तहाकर बाॅधी हुई खद्दर की नोकीली पगडी मेरी कुर्सी की चौडी बाॅह पर रख दी। दोनों हाथों की अंगुलियाॅ आपस में चटखाते हुए खिडकी की राह देवदार की टहनियों पर नजर दौडा उसने पूछा—'क्या हो रहा है ?'

'कुछ नहीं, ऐसे ही,.........सुनाओ !'—पुस्तक एक ओर रख उत्तर दिया।

'यों ही चला आया ' ' कुछ घूमा फिरा करो ''फायदा क्या है पहाड आनेका ? तुम्हारा नौकर कहाँ है ? ' एक गिलास जल पीता। पहाड पर चलने से व्यायाम अच्छा हो जाता है।' रामनाथ ने नसीहत की।

'भोला ! पानी लाओ, एक गिलास !'—मैने पुकारा।

रामनाथ सुना रहा था, कौन कौन मंसूरी आये हुए है, किन लोगो से वह मिल आया है, कौन जल्दी ही नीचे चले जानेवाले है। पाँच मिनट बीत गये। जल के लिये उसने फिर याद दिलाई इस बार कुछ ऊँचे स्वर मे जल लाने का हुक्म दोहरा कर में रामनाथ की बात सुनने लगा। कुछ मिनिट और बीत गये। झुंझलाकर उसने कहा—'बडा बत्तमीज है नौकर तुम्हारा '' या सो रहा है ?'

तैश में उठा। खयाल था, पिछवाडे बैठ कर भोला जूतों पर पालिश करते हुये सोगया होगा। जाकर देखा, काम खतम कर वह गायब है। रसोई मे झाँका। वहाँ भी वह न था।

रसोई की खिडकी के नीचे समीप की कोठी का खण्डहर है। किसी आँधी से कोठी की छत उड गई। वह कतई बेकार पडी है। लेकिन उस कोठी के बगीचे में अब भी भोला की देख-रेख में तरकारी और फूलो की खेती मेरे उपयोग के लिये होती है। हमारे प्रयत्न से उत्पन्न भोजन की सामिग्री मे भाग पाने के लिये लँगूर भी उधर चक्कर लगाते है। सोचा, भोला लँगूरो को खेदने गया होगा।

खिडकी की जाली से झाँका। भोला वहाँ था परन्तु अकेला नही। उसे पुकार न सका ; उचित न जान पडा। कौतुहल था परन्तु देखते रहने मे संकोच अनुभव हुआ। स्वयं जलका गिलास ले लौट आया।

'अरे ·!'—रामनाथ ने विस्मय से पूछा—'क्यों, नौकर क्या कर रहा है ?'

'उसे रहने दो' - मुस्कराहट न रोक सका।

'क्यों'—रामनाथ ने प्रश्न किया।

'इस समय उसे पुकारने से शाप लगेगा।'

आधा गिलास जल पी सांस लेते हुये रामनाथ बोला—'मतलब ?'

मेरी मुस्कराहट से उसका कौतूहल और जगा। गिलास समाप्त कर उसने अपना प्रश्न दोहराया।

'देखोगे ?'–मैंने पूछा–'लेकिन चुप रहना, आहट न करना आओ !'

रसोई घर की खिडकी के समीप खड़े हो अंगुली से रामनाथ को दिखाया :—गिरी हुई कोठी के पिछवाडे पहाड की दीवार के साथ, जहाँ बडे-बडे पत्थरों का पुस्ता बना है और पत्थरों की सांधों में से जंगली गुलाब, केसरी नस्टूशियम और सुफेद हनीसकल के फूलों से लदी बेलें हवा में हिलोर रही थीं ; नीचे चौडी चट्टान पर भोला बैठा था और उसके साथ बैठी हुई थी, फटती जवानी से चंचल एक खूबसूरत गोरखा लडकी। लडकी सीप के बटनो से सजी काले अलपाका की वास्कट, सफेद कमीज और काले किनारे की मोटी गुलाबी रंग की धोती पहरे थी। दोनों के चेहरे खुशी से दमक रहे थे। रामनाथ की ओर बिन देखे मेरे मुख से निकला—'प्रकृति ने क्या सुहाग-सेज सजाई है।

भोला बाँये हाथ से लडकी का दाहिना हाथ थामे दाहिने हाथ की अँगुली से उसकी ठोडी और गालों को गुदगुदाने की चेष्टा कर रहा था। वह लडकी बाँये हाथ में थमी नस्टूशियम की एक टहनी से भोला के सिर पर मार मार कर इस शरारत का दण्ड दे रही थी।

भोला ने उसका दूसरा हाथ भी पकड़ उसे खींच कर बाँहों में ले लिया। बार बार वह अपने ओठ आगे बढ़ाता और लडकी अपना मुँह कभी दांये और कभी बाँये हटा लेती। अखिर भोला को सफलता मिली। लडकी का सिर पीछे लटक गया उसने बाँहें भोला के गले में डाल दीं।

'अब आ जाओ !'—रामनाथ का हाथ दबाकर मैंने कहा।

गम्भीर क्रुद्ध दृष्टि से मेरी ओर देख उसने पूछा—'यह औरत कौन है ?

'बुड्ढे गोरखा चौकीदार की नयी जवान बीवी ।'—उत्तर दिया ।

'यह क्या बदतमीजी है ?'—मुझे डाटते हुए उसने कहा—'शरम नही आती ?'

'कमरे में आ जाओ !'—धीमे स्वर मे उत्तर दिया ।

'मेरा नौकर होता, खाल खीच लेता—रामनाथ झुंझलाया—'और तुम देखकर खुश हो ।'

'क्यो ?'—कुछ हत-प्रतिभ होकर पूछा ।

'क्यो ?'—आश्चर्य और क्रोध भरी दृष्टि से मुझे सिर से पैर तक देखते हुए रामनाथ ने दुहराया ।

'हाँ क्यो ?'—मैने आग्रह किया—'आखिर क्या अत्याचार हो गया ?

'अत्याचार या अनाचार और क्या होगा ?'—रामनाथ क्रोध में थुथला गया ।

'हो सकता है परन्तु मै-तुम दखल देनेवाले कौन है ? उनके मनकी चाह है और वह औरत भी परम सन्तुष्ट है । और शायद यह संतोष उस औरत को दूसरी किसी जगह नही मिल सकता । उन्हें अवसर मिला है तो कोई दखल क्यो दे ? ' किसी को क्या अधिकार है ?' सहमते हुये मैने उत्तर दिया ।

'अधिकार'—क्रोध मे थुथला कर रामनाथ ने प्रश्न किया ।

'हाँ अधिकार—मैने साहस किया—पन्द्रह रुपया माहवार में मैने क्या उसका जीवन खरीद लिया है ? भोला ऐसा क्या कर रहा है जो दूसरे नही करते ? किस बात के लिये उसकी खाल खींच ली जाय ? केवल अवसर का सवाल है ।'

'और वह तुम्हारा बूढा गोरखा चौकीदार ?'—आवेश वश मे करने के लिये अपने बन्द गले के कोट में बटन बन्द करते हुए रामनाथ

बोला—'देखले तो खुखरी से सिर काट लेगा या नहीं ?'

'काटने का यत्न करेगा ज़रूर। वैसे ही जैसे आज़ादी के लिये जान की बाजी लगा देने वाले गुलाम को शोषक मालिक कालेपानी और फांसी की सज़ा देता है। परन्तु उस बूढ़े को अधिकार क्या है ? क्या उसका ही संतोष सब कुछ है, इस औरत का कुछ नही ? क्या उस लड़की को वह बूढ़ा यह तृप्ति दे सकता है ?'

विस्मय से फैली आँखो से रामनाथ मेरी ओर घूर रहा था परन्तु मै कहता गया—'क्या सिर काटे जाने के खतरे को वह लड़की नहीं जानती ? उस खतरे और जोखिम को जानकर, सिर हथेली पर रखकर वे दोनों जीवन की प्रेरणा से मिले है। उनका यह स्वच्छन्द मिलन कितना स्वाभाविक और पवित्र · ·· अपने शब्दो से मै स्वयम ही हतप्रतिम हो गया। मन में ऐसी बात सोचने पर भी समाज में सम्मान खोदेने के विचार से वह बात कभी होठों पर न आई थी। मुख से बात निकल जाने पर निबाहने के लिए कहा—'और तुम उस जाहिल चौकीदार की तरह उसकी खाल खींच लेना चाहते हो ?'

'जाहिल·· वह उसकी ब्याहता औरत नहीं ?'—मुझे निरुत्तर कर देने के लिए रामनाथ ने पूछा।

'ब्याह क्या है ?'—मै निरुत्तर न हुआ।

'ब्याह क्या है ?'—उसने दोहराया।

'स्त्री पर पुरुष का अधिकार ?'—मैने पूछा।

'हाँ अधिकार, धर्म और समाज का अधिकार !'—अपनी मुट्ठी ऊपर उठाकर रामनाथ बोला।

'वैसा ही अधिकार जैसा दास के जीवन पर स्वामी को होता है ?'

रामनाथ झुंझलाहट में फिर थुथला गया—'पुरुष आयु-भर सब संकट झेलकर स्त्री का पालन नहीं करता ? क्या इसलिए कि वह उसे धोखा दे ? रामनाथ के नेत्रो में विजय चमक उठी।

इस पर भी मै बोला—

'अच्छा यदि मोटरो के अड्डे पर घुटनो के बल रेंगकर भीख मांगने वाली बुढ़िया तुम्हें एक लाख रुपये रोज़ की मजदूरी दे पति की ड्यूटी पर नौकर रखना चाहे'''' यदि उसकी दया बिना तुम्हें भोजन वस्त्र की सुविधा न रहे ?'

'तुम्हारा दिमाग फिर गया है'—वितृष्णा से उसने उत्तर दिया—'ऐसा कभी हुआ है ?'

पीठ फिराकर वह चला गया।

और मै सोचता रहा—सच है, शायद ऐसा कभी नही हुआ। और हे भगवान ऐसा कभी न हो।'' '''शायद ऐसा होगा भी नहीं। '' '''भगवान के रहते ऐसा अत्याचार न होगा क्योंकि वे स्वयम् पुरुष है।

९

देवी का वरदान—

कम्पोज़ीटर की तनख़ाह ही कितनी, बीस न हुये पच्चीस। छुट्टी के समय भी काम (overtime) करके तीन-चार और कभी पाँच और बन जाते। तनख़ाह कम होने पर भी कम्पोजीटर का काम आसान नहीं होता। अक्षर-अक्षर जोड पोथी तैयार कर देना सहल काम नही।

जाल बुनती मकडी की तरह फुर्ती से हाथ चलाकर सामने फैले पाँच सौ तेरह खानों में से चींटी-चींटी जैसे अक्षर चुनकर शब्द बनाना, शब्दो से वाक्य और वाक्यों से पंक्तियाँ। आँखे पथरा जाती है, कमर टेढ़ी हो जाती है और दिमाग़ बिलकुल कुन्द। अपने हाथ से बने आत्मज्ञान और भौतिक-ज्ञान के ग्रन्थों के विषय में वह कुछ भी नहीं जान पाता। जैसे मधुमाखी अपने बनाये शहद की महिमा नहीं जानती। पुस्तक पढ़ने वाला भी कम्पोजीटर को कभी जान नही पाता।

पुस्तक बना सकने की यह विद्या जान कर भी रग्घू महाराज पुस्तक बनाने का मुनाफा न कमा पाये। कारण यह कि छापे के अक्षर टाइप फाउण्डरी से खरीदने के लिये हज़ार से अधिक रुपया दरकार होता है।

और अक्षरो के रुप मे तैयार पुस्तक को कागज पर छापने के लिये हजारो रुपये की मशीन की जरूरत होती है। कागज के लिये भी सैकडो चाहिये। फलत. चातुर्य और महाविद्याओ से पूर्ण अनेक ग्रन्थो और पुस्तको के निर्माण मे परीश्रम करके भी रग्घू महाराज जो थे वही रहे।

युद्ध का सकट जैसा दूसरे लोगो पर पडा वैसे ही रग्घू महाराज पर भी। युद्ध के महासकट के अगल-बगल इस संकट से कुछ त्राण के उपाय भी पैदा हो गये। प्रकृति मे प्राय. ऐसा होता है. – जहाँ बिच्छू-बूटी उपजती है उसके समीप ही इस बूटी के छू जाने से पैदा होने वाली पीडा को दूर करने वाली पत्ती भी उगी रहती है और कुछ लोगो का विश्वास ह कि विषधर सर्प के सिर की मणि ही सर्प के विष का उपाय भी कर देती है।

रग्घू महाराज पर युद्ध का संकट तो आया परन्तु उस बिपदा से त्राण के उपाय उनके बस के न थे। गोमती-प्रेस के उनके अनेक साथी २०) की कम्पोजीटरी छोड गन फैक्टरी मे चालीस पैतालीस की मजदूरी करने लगे। कुछ ने कम्पोजीटर की तनखाह मे पेट भरते न देखा तो फौज के लिये तरकारी सुखाने के कारखाने मे जा सवा डेढ़ रोजाना की पगार करने लगे।

ब्राह्मण की सन्तान होकर रग्घू महाराज के लिये यह सब ओछे कर्म सम्भव न थे। बीस बिसवे मिसिर ठहरे। गनफैक्टरी मे दिन भर जाने किस-किस नीच जात का साथ हो ? · प्यास लगे कभी पानी का घूँट ही निगलना पडे तो वहाॅ कैसे होता ? ···जो दुख सकट बदा है उसे तो झेल ही रहे थे, जाति और धर्म गवाकर परलोक भी बिगाड लेते ! मजदूरी चाहे चवन्नी की हो चाहे चालीस रुपये की, है मज़दूरी ही। शूद्र का कर्म ! काशी महाराज की सान्तान हो, कंधे पर बरमसूत (जनेऊ) पहने रग्घू मज़दूरी करने कैसे जाते ? प्रेस के काम

में तलब कम भले ही हो परन्तु काम तो इज्ज़त का है; सरस्वती की पूजा ! ब्राह्मण को वही काम शोभा देता है। आदमी अपने धर्म-कर्म से रहे, कर्म का फल देने वाले भगवान है।

रग्घू महाराज का जन्म पत्री का नाम रघुनाथ मिश्र था। घर के लोगो ने छुटपन में लाड से या सहूलियत से रग्घू पुकारा। आयु तो बढ़ी, शरीर भी बढा परन्तु समाज अथवा व्यक्तियो की दृष्टि मे रग्घू के व्यक्तित्व का आदर न बढा। बाल खिचडी हो जाने पर भी वे रग्घू ही रहे या जाति के प्रति आदर के विचार से महाराज कह कर पुकार लिये जाते। जन्म की पवित्रता के कारण या उपयोग के विचार से उनका आदर था। प्रेस से कभी किसी गाहक के संयोगवश जल माँग लेने पर रग्घू महाराज की ही पुकार होती। वे हाथ धो, प्रेस के अहाते के कुंये से जल की चमचमाती लुटिया हाथ पर रख गर्व से दफ्तर में उपस्थित होते। कौन है ऐसा जो उनके हाथ का जल पीने से इनकार कर सके ?

सुनते है, नवाब वाजिदअलीशाह के एक सूबेदार असमतअली ख़ान प्रौढ़ अवस्था तक सन्तानहीन रह दुखी थे। रग्घू महाराज के पुरखा पंडित काशीनाथ मिश्र के मंत्र बल से सूबेदार साहब को पुत्र प्राप्त हुआ। इससे नवाब के दरबार तक काशीनाथ मिश्र की पहुँच होने लगी। दुर्भाग्य से रक्षा के लिये जहाँ नवाब मौलानाओ और पीरों के दिये गण्डे तावीज़ व्यवहार में लाते थे वहाँ पण्डित काशीनाथ मिश्र भी उनके लिये महामृत्युञ्जय मंत्र का जप कर कवच तैयार करते थे। मिश्र जी को सल्तनत की ओर से जागीर मिली थी और गोल दरवाजे के समीप कहीं उनकी हवेली भी थी। हवेली इतिहास के अथाह गर्भ मे छिप गई।

चौक में रहने वाले मिश्र वंश के ब्राह्मण स्थान की खोज में शनै.-शनै. नई बस्तियों की ओर बढ़ने लगे। रग्घू महाराज के पिता वज़ीरगंज मे रहते थे। उनका जैसा-तैसा अपना कच्चा मकान था। रग्घू

महाराज के एक बडे भाई बिन्दू महाराज अब भी वहीं रहते है। पुरोहिती और ज्योतिप का वशागात पेशा वे अब भी सम्भाले है। भगवान की दया से मिश्र परिवार की फूलती-फलती संतती के लिये उस संकुचित घरौन्दे मे पर्याप्त स्थान न रहा। रग्घू महाराज के तीन भाई अपने स्त्री और सन्तान लेकर जीविका और स्थान की खोज मे जाने कहाँ-कहाँ चले गये। रग्घू महाराज आकर टिके अहिय्यागंज की एक गली मे।

गली कच्ची थी और रग्घू महाराज के सौभाग्य से वह कभी पक्की न बन पाई। इसीसे चवन्नी माहवार पर ली हुई उनकी कोठरी का किराया भी पच्चीस बरस मे दो रुपये महावार से अधिक न बढ़ सका।

रग्घू महाराज के पुरखो से कथा चली आती है कि नवाब वाजिद-अली के सूबेदार असमतअली खाँ का श्राप पं० काशीनाथ मिश्र ने तोड दिया इससे देवी उनसे क्रुद्ध हो गई। निस्सन्तती का श्राप उन्ही पर आ पडा। एक लडका उनके था और फिर कोई सन्तान न हुई। और लडके के युवा हो जाने पर भी वह निस्सन्तान रहा। काशीनाथ महाराज ने देवी की अराधना की। देवी ने साक्षात दर्शन दे आज्ञा दी—'तूने म्लेच्छ का शाप तोडा है। तुझसे एक-एक सन्तान का मूल्य सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन लूँगी'।

काशी महाराज ने देवी की आज्ञा पूर्ण की। उनके पोता उत्पन्न हुआ। तब से वंशपरम्परा की रक्षा वे लिये पं० काशीनाथ मिश्र के वंश में प्रत्येक सन्तान के जन्म पर सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का नियम स्थिर हुआ। इस नियम कि फल से काशीनाथ का वंश खूब समृद्ध हुआ। देवी के आशीर्वाद से एक-एक पुत्र के दस-दस बारह-बारह सन्तान हुये।

समय के परिवर्तन से सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का रूप बदल गया। वह सन्तान जन्म के समय अग्नि मे सौ आहुति देने

और ब्राह्मणो को सौ कौर खिलाने के रूप में परिणित हो गया। समय और बदला और काशीनाथ के वंश मे प्रत्येक सन्तान के जन्म के समय भविष्य में माता की बांझपन से रक्षा करने के लिये सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का रूप अग्नि में एक सौ दाने जौ तिल डाल कर एक सौ दाना चावल का गौरैया को खिलाने का टोना मात्र रह गया। अहियागंज की कच्ची गली मे रघ्घू महाराज के घर प्रचीन गौरव का यही रूप शेष था।

परन्तु देवता तो द्रव्य के भूखे नही, भावना के ही भूखे होने है। रघ्घू महाराज के घर में भावना के इस अत्यन्त संक्षिप्त रूप का प्रभाव ही यथेष्ट था। घर मे दारिद्रय होने पर भी भगवान की दया थी। स्थान और भोजन वस्त्र पर्याप्त न मिलने पर भी मंगल-सूचक ढोलकी की ताल उस घरौंदे से प्राय. सुनाई देती ही रहती। कभी दूसरे वर्ष और कभी बरस बीतते ही पास-पडोस से अहीरन, काछिन और नाउन उनके घर घिर आती और कौतुक पूर्ण लज्जा से मुख के सामने आँचल कर चंचल नेत्रो से उन्हें सम्बोधन करती :—'हाय भैय्या, भौजी के लिये हरीरा-वरीरा कुछ नही लाओगे क्या ?'

सन्तान जन्म के उस आल्हाद और उत्सव के क्षण मे रघ्घू महाराज श्रम और भूख से अकाल में ढीले पड गये कधों मे गर्दन लटकाये, आँखे छिपाते, हाथ मे लाल अंगोछा लिये, गली में बहते कीच की धार के दोनों ओर कदम रखते बडबडाते चले जाते—'ससुर जाने का परछावाँ पडे से ही पेट हो जाता है······ !'

दसवी सन्तान के समय तो क्षोभ के आवेश में लोकलाज भी डूब गई। बूढ़ी अहीरन चुनिया ने पोपले मुँह से हरीरे की दिल्लगी की तो महाराज उबल पड़े, क्या कहत हो चुनिया तुमऊ, ससुर कुतिया सी चैत के चैत ब्याये जात है, रोज-रोज हरीरा धरा है परन्तु कुल की रीति से बाँझ पन का निवारक सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का

टोना किया ही गया। यहाँ पहलों को ही टुकडा नहीं जुड रहा।'

महाराज के घर सन्तान होने का समाचार जैसे-तैसे प्रेस भी पहुँच जाता। बधाइयों की बौछार होने लगती। महाराज कभी झेंपते कभी झल्लाते। लोग पूछते—'अरे महाराज, बताओ तो ऐसा क्या खाते हो ?' और मसखरे बोल उठते—'अरे बडे-बडे कुश्ते मालूम है महाराज को' रग्घू झुंझलाकर गाली पर आ जाते।

बात घूम फिर कर महाराजिन के कान तक पहुँच जाती और वे अपने अपराध के लिये बेबस चुप रह जाती। परन्तु भगवान के दिये को कौन टाल सकता है। ग्यारहवीं सन्तान भी महाराजिन की कोख से हुई ही और देवी का टोना फिर भी किया गया, कुल की रीति थी।

दैव की दया से महाराज की ग्यारह मे आठ सन्तान जीवित थीं, पाँच लडके और तीन लडकियाँ। महाराज ने जैसे तैसे दो लडकियाँ व्याह दी थीं। परन्तु बडी लडकी विधवा हो ससुराल के सन्ताप से गोद मे बरस भर की लडकी लिये रोती हुई बाप के यहाँ लौट आई। दोनो बडे लडको के व्याह भी होगये थे। स्वयम् महाराज को इतनी जल्दी न थी परन्तु इतने ऊँचे कुल में अपनी कन्या दे पुण्य कमाने वाले सद्विप्रों की कमी न थी। इस लिये बहुत ठहराते-थमाते भी दोनो बडे लडको की बहुएँ आचुकी थीं और भगवान की दया और देवी के टोने के बल से महाराजिन के ग्यारवीं सन्तान होने से पहले ही उन्होने पोते का मुख देखा।

सन् १९४४ से भयंकर अन्न, वस्त्र और स्थान का दुष्काल भारत ने कभी नहीं देखा। महाराज के घर बरस भर से ज्वार और बाजरा ही आ रहा था और वह भी एक रुपये का अंगोछे मे बँध कर चार सेर के भाव आता। वस्त्र का यह हाल कि छः पैसे गज की चीज़ रुपये गज़ पा जाते तो बजाज को आसीस देते। शरीर की खाल मे लगे खोंचे से अधिक पीड़ा देता था कपडे में लग गया खोंचा। मजबूर हो

महाराज चीथड़े वाले के यहाँ से टुकड़े चुन-चुनकर लाये कि किसी तरह औरतों की कमर पर कपड़ा रहे।

घर नाम के उस घरोंदे में एक भीतर की ओर एक बाहर की कोठरी थी। उसी में सब परिवार समाया रहता। समाया ऐसे रहता जैसे खूब फला फूला पौधा गमले में समाया रहता है—जड़ गमले के भीतर दबी रहती है और शाखायें और पत्ते आकाश में फैले रहते हैं। वैसे ही परिवार का सम्बन्ध घर की कोठरियों से था, वर्ना यों दिन में बच्चे जाने कहाँ बिखरे रहते। स्त्रियाँ गली के कोने पर नीम के नीचे या दीवारों की छांव में समय बिता देतीं। गरमी की रात में सब लोग टाट-बोरी का टुकड़ा ले गली में बिछ जाते। अलबत्ता बरसात और माघ-पूस के जाड़े में उन कोठरियों में बसौत में फूट आये कीड़ों का दृश्य बन जाता। अंधेरे में दिखाई कुछ देता न था परन्तु अवस्था वही होती जैसे बसौत में धरती से गिजाइयों के फुट आने पर होती है; किसी की कमर पर किसी का सिर और किसी के पेट पर किसी के पांव। बच्चों में मार-पीट हो जाती। दोनों बहुयें गोद के बच्चों को चिपकाये सास की ओट में दीवार से चिपक कर सो जातीं। इस पर भी भगवान जब देते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं।

पूस में छोटी बहू की गोद फिर हरी हो गई। मगल सूचक ढोलक बजी। महाराज किसी तरह ढीले कंधों में गरदन लटका कर पोते के जन्म के समय भी देवी का टोना करने बैठे। उनके हाथ शिथिल थे और मन बुझा हुआ। परन्तु पोते के जन्म का सगुन कैसे न करते। महाराजिन बिखरे जर्जर शरीर को फटी धोती में समेटे बैठी सतर्कता से देवी के टोने का पूर्ण किया जाना देख रही थीं। आठ दस आने का बायना भी बंटा। महाराज जैसे अपने शरीर का मांस चुटकियों से तोड़-तोड़ दे रहे हों।

रग्घू महाराज को आठ रुपये महँगाई भत्ता मिलने लगा था।

पर उससे क्या होता ? बारह प्राणियों के पेट तेंतीस रुपये मे क्या भरते, जब ज्वार बाजरा चार सेर का मिल रहा हो ? यो राशन कार्ड बनाने वाल मुंशीजी ने ब्राह्मण पर दया कर सात की जगह कार्ड मे दस बालिग लिख दिये थे। परन्तु उतना गल्ला खरीदने को रकम कहाँ थी ? सो महाराज अपने कार्ड पर प्रेस के मालिक बाबूजी की गैय्या के लिये अन्न खरीद देते। और आदमी जबतक जिन्दा है शरीर के कुछ भाग पर कपड़ा भी चाहिये ही। आखिर महाराज ने प्रेस मे चिरौरी कर बडे लड़के को प्रेस मैं अठारह रुपये पर डिस्ट्रीब्यूटर करा लिया। महाराज ब्रह्म तेज से शरीर के कष्टों को झेले जा रहे थे परन्तु छोटा लडका माधो कलयुगी सन्तान निकला। एक दिन घर से लापता होगया । जाने कहाँ चला गया ? अहमदाबाद की किसी मिल मे कोरी का काम करने या फौज से भरती हो गया ?

महाराज कभी सोचते, जाने लडके का क्या होगा ? यहाँ जैसे-तैसे दिन कट रहे थे परन्तु थे तो सब एक जगह। और कभी सोचते दो हाथ-पाँव भगवान के दिये है, किसी तरह पेट भर लेगा। यहाँ क्या मुँह भरने को कम है ? बड़ी बहू का खयाल आजाता, उसका फिर पैर भारी था ‥ ‥एक ओर तो राम जी भेज रहे हैं। ऐसी चिन्ताओ से महाराज हरदम खौखियाये रहते बल्कि सारा घर ही खौखियाया रहता जैसे लडाई के दिनो मे मेले का अवसर आजाने पर किसी बड़े स्टेशन पर रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे में हालत होती है। हर कोई दूसरा को अपना शत्रु समझ नोंचने और धकेल देने में लगे हुआ। बच्चे एक दूसरे को और बहुयें और महाराजिन अपने बच्चो पर दाँत पीसती रहतीं—राम जी तुझे उठा ले ! राम करे तेरे कीड़े पडे। और महाराज खिजबिला कर सभी को रामजी को सौंपने को तैय्यार हो जाते।

एक दिन मुँह अँधेरे ही महाराजिन ने ठेलकर जगाया—'कि नाऊन जमनी को तो बुलादो पिछवाड़े से। बहू को दरद पूरे नहीं उठ

रहे है ।' दिन चढते-चढते पास पडोस की बहुऐं और सासें घिर आईं । बडा लडका झेंप के मारे कहीं खिसक गया । सब कुछ उन्हें ही करना था ।

महाराज प्रेस जाने के लिये बदन पर कुर्ता पहन रहे थे कि महाराजिन नें पुकारा—'अरे कहाँ जाते हो, तनिक ठहर जाओ । लड़का हुआ है—देवी का जग तो कर जाओ !'

महाराज का शरीर प्रात: निष्प्राण हो रहा था । 'हाँ' कर वह मुँह बाये खडे रह गये । इतने मे पडोस से ढोलक आगई और गाने की आवाज भी उठने लागी । अहीरन चुनिया ने उलझकर कहा—'अरे आवाज से गाओ ! क्या हो रहा है तुम्हारे गलों को ?' पडोसनों के चेहरे पर प्रसन्नता थी । महाराजिन का चेहरा मुर्झा रहा था ।

महाराजिन मुँह से गीत कहती जल्दी मे जौ-तिल और चावल के दाने बीस-बीस की ढेरी में पाँच-पाँच जगह गिन रही थी और महाराज झुकी कमर पर दोनो हाथ टिकाये कुछ सोच रहे थे । निश्चय करने के प्रयत्न में उनकी पीली लम्बी मूँछे जबड़ो के हिलने से हिल जातीं । वे मन में बेर-बेर कहे जाते थे—'नहीं बस अब और नहीं ।' परन्तु मुख से कुछ कहने का दम न था ।

महाराजिन एक कछुली में आग ले आईं और बोली—'कर दो-न देवी का जग !'

महाराज को झिझकते देख आशंका से उन्होने पूछा—'काहे ?'

'हाँ होता है'—देवी के प्रकोप के भय से महाराज स्वयम भी अस्थिर हो रहे थे । दुविधा में उकडू बैठ गये । परन्तु हाथ जौ-तिल की ओर न बढे ।

आशंका से महाराजिन की आंखे-फैल गईं—'काहे, अबेर किये दे रहे हो ?'

'अबेर हो रही है' इस विचार से महाराज को जैसे कुछ सहारा

मिला परन्तु इनकार का साहस न था। टालने के लिये बोले—बहू तो ठीक है उसे देखो ?'—फिर सिर खुजाया—'प्रेस में देर हो रही है।'

'हाँ तो देवी का जग तो करो! अबेर कितनी करदी।' चेचिया कर महाराजिन ने सचेत किया।

'हाँ तो तुम गाओ तो!'—महाराज ने कहा और सहसा उठ कर घर से बाहर हो प्रेस की ओर चल पड़े।

महाराजिन का हृदय देवी के क्रोध के भय से धक से रह गया—'हाय क्या होगा ?'

और महाराज फुर्ती से कदम बढ़ाये जा रहे थे।

पीछे से गीतों की आवाज़ ऊँची हो रही थी और महाराजिन की पुकार सुनाई दे रही थी।

महाराज चाहते थे, गीतो के स्वर से अधिक तीव्र गति से वे उस भय से भाग जांय किसी तरह देवी के बरदान से बच जाँय।

१०

इस टोपी को सलाम—

गरमी से परेशान हो कर या स्वास्थ्य के लिये पहाड़ जाने वालों से नैनीताल की रौनक नहीं होती। ऐसे लोग ओंठ भींचकर नाक से लम्बी साँस लेने की कोशिश करते, हाथ में छड़ी लिये सूनी सड़कों पर चहल कदमी करते दिखाई देंगे या अखबार, पुस्तक लिये पलंग या कुर्सी पर पड़े रहेंगे। बहुत हुआ, झील के किनारे जा बेंच पर बैठ, दूसरों का मनोविनोद देख अपना दिल बहला लेंगे।

गरमी के मौसिम में गरमी तो होती है। लेकिन साहबियत के रिवाज़ से पहले पहाड़ कौन जाता था? अंग्रेजों को गरमी ज्यादा सताती है। इसलिये गरमी से अधिक परेशान होना साहबियत या बड़प्पन का चिह्न हो गया है। इसके अलावा नई सभ्यता या साहबियत के विलास वहीं होंगे जहाँ साहब होंगे। गरमियों में साहब और बड़े आदमी दूर-दूर से सिमट कर 'हिल स्टेशनों' (मंसूरी-नैनीताल) में इकट्ठे होते हैं और वहाँ साहबियत के विलास के अखाड़े बन जाते हैं। शौक रखने वाले दूर-दूर से आ कर वहाँ जुटते हैं। बरस भर की

उमंगें महीने-पन्द्रह दिन में यहाँ आ कर पूरी करते हैं। जैसे बरात में जाने के लिये या नौकरी पाने की आशा में 'इण्टरव्यू' करने जाते समय पोशाक और सामान का चुनाव किया जाता है, कभी-कभी उधार भी ले लिया जाता है, वैसे ही नैनीताल के सम्बन्ध में भी समझिये।

मुरारी नैनीताल का ऐसा ही यात्री था।

दोपहर से ही विचार था कि साँझ को अपने अतिथि मित्र खत्री के साथ 'कैपिटल' में सिनेमा देखने जायगा। इसलिये समय से शेव कर उसने अचकन, चूड़ीदार पायजामा और तीखी नोक की गाँधी टोपी पहनी। उसके पुष्ट, चौड़े सीने पर अचकन सूट से कहीं अधिक जँचती भी थी। तल्लीताल से मल्लीताल को रवाना हुये। खत्री भी खूब जँच रहा था।

बाजार की उतराई उतर, झील के सामने डाकखाने के पास पहुँचे, तो आगे रिक्शाओं ने राह रोक रखी थी। उस जगह प्राय. ऐसा ही जमघट हो जाता है। दाहिनी ओर ऊपर के बँगलों और आर० ए० एफ० के साहब लोग क्लब से उतरते हैं। समीप ही नीचे से आने वाली मोटरों का अड्डा है। और भी कई सड़कें वहीं आकर माल रोड से मिलती हैं। जहाँ साहब लोगों का, विशेष कर अमेरिकन और गोरे लोगों का झुण्ड रिक्शेवालों ने देखा, अपने-अपने रिक्शे ले कर झपटते हैं, जैसे गुड़ की डली पर मक्खियाँ टूट पड़ती हैं। रिक्शे भिड़ जाते हैं और राह बन्द हो-जाती है।

ऐसा ही हाल मुरारी और खत्री ने सामने देखा। और देखा—बीच में तीन गोरे घिरे थे और पाँच छः रिक्शे आगे-पीछे आपस में भिड़े थे। रिक्शाकुली गोरों का सामान खींच-खींचकर चिल्ला रहे थे—'हजूर इधर! साहब इधर! हमने पेले कहा! हजूर हमने पेले! साब, ये है रिक्शा! इसमें रक्खो'' जैसे कुत्तों का झुण्ड किसी हड्डी प

पडे, हर एक ले भागने के यत्न मे और दूसरे उससे झपट लेने की कोशिश में! सभी कुली साहबों की सेवा के लिये लालायित आपस मे झगड रहे थे।

यों खसोटे जाने से एक गोरा बौखला उठा। वह कुलियो को थप्पड, घूँसे मार कर परे हटाने की कोशिश करने लगा। फिर जैसे किसी गधे या भैंसे को हाथ से चोट देना व्यर्थ मालूम होता है, गोरे ने अपने भारी फौजी बूट से कुलियों को मार कर पीछे हटाने की कोशिश आरम्भ की। परन्तु उलझे हुए रिक्शे तुरन्त तितर-बितर कैसे हो जाते? और साहब का क्रोध बढ़ता जाने के कारण उसके हाथ-पॉव तेजी मे चलते जा रहे थे।

साहब की सेवा के लिये आतुर कुली एक हाथ से सिर बचाने की कोशिश करने, पीठ पर मार खाते हुये भागने की राह ढूँढ रहे थे परन्तु उलझ जाने के कारण निकल नही पा रहे थे।

देखकर मुरारी का खून सिर मे चढ़ गया। खत्री को सम्बोधन कर उसने अंग्रेजी में कहा—'यह क्या जुल्म है? गोरे हिन्दुस्तानियों को ऐसे पीट रहे हैं!… यही कांग्रेस गवर्नमेन्ट है?'

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना, वह कुलियो के झुण्ड में घुस बौखलाये हुये गोरे के सामने जा खडा हुआ और ऊँचे स्वर में अँग्रेजी में बोला—'किसी को मारने का हक किसी को नहीं है। तुम जाकर पुलिस मे रिपोर्ट कर सकते हो!'

खत्री भी उसके साथ-साथ था।

गोरे के हाथ-पॉव रुक गये। उसने मुरारी और खत्री को सिर से पाँव तक जाँचा और फिर अपनी सफ़ाई देने के लिये उँगलियाँ नचा-नचा कर गोराशाही अँग्रेज़ी से बहुत-कुछ कह गया। उसके साथी गोरे भी बोलने लगे।

बी० ए० तक अँग्रेजी पढने के बावजूद उस अँग्रेज़ी का कुछ भी

अर्थ मुरारी की समझ मे न आया। उसने फिर किसी को मारने-पीटने के अधिकार और पुलीस से शिकायत करने के सम्बन्ध में अपनी बात दोहराई। खत्री ने भी वही कहा। गोरे एक ओर हट गये और फिर 'रिक्शा, रिक्शा,' पुकारने लगे। रिक्शे तुरन्त आ गये और शायद वही कुली सब से पहले आये जिन्होने थप्पड, घूँसे और जूते खाये थे।

गोरे तो रिक्शो मे बैठ कर चले गये परन्तु मुरारी के तन-मन में आग लग गई। झील के साथ-साथ चलते हुये उसने पुलीस को गाली दे कर कहा—'यह ··· इन अपने बाप गोरों से ऐसा डरते है कि कभी कुछ न कहेंगे।"

'कहेंगे क्या?' खत्री ने उत्तर दिया—'पुलीस वाले अंग्रेज़ सरकार के नौकर है कि हिन्दुस्तानियों के? इन्हें इन्साफ से क्या मतलब?'

ग्लानि के स्वर मे मुरारी बोला—'यह साले रिक्शे वाले खुद जानवर है। इनमें जरा भी इनसानियत हो तो गोरों को कभी रिक्शा पर बैठाये ही ... '

'रिक्शेवाले ही क्या!' खत्री ने टोक दिया—'अरे, जहाँ देखो यही हाल है। कहीं किसी होटल मे जा कर देख लो! ये हिन्दुस्तानी बैरे बडे-से-बडे हिन्दुस्तानियो को छोड कर टुच्चे-टुच्चे गोरों का ख्याल करेंगे! उन्हें मतलब रहता है टिप (इनाम) से। हिन्दुस्तानी चाहे ज्यादा भी दे लेकिन उनके दिमाग मे तो साहब की खुशामद इतनी भर गई है कि कोई क्या करे?'

मुरारी ने लम्बी साँस लेकर कहा—'अरे, यही न रहे तो स्वराज्य ही न मिल जाय। असहयोग का मतलब और है क्या? लेकिन हो भी तो?'

'हो कैसे ?' खत्री ने उत्तर दिया—'अंग्रेजों ने सब को अलग-अलग खरीद रखा है। इसी देश के पैसे से इस देश के आदमियों को खरीद रखा है। एक-दूसरे का गला काट कर अंग्रेजों की जूती चाटते हैं कि मैं बड़ा बन जाऊँ। हिन्दुस्तानियत के ख्याल से कोई सोचता ही नहीं ?'

झील की हिलोरें लेती सतह पर दृष्टि दौड़ाते हुये, मन के क्रोध से होंठ काट कर मुरारी बोला—'सब को पेट की पड़ी है ? ऐसे कहीं स्वराज्य मिलता है ? पहले होना चाहिये राष्ट्रीयता का ख्याल ?'

दोनों मित्र राष्ट्रीयता के भाव की आवश्यकता पर अंग्रेज़ी में बहस करते चले जा रहे थे। अपनी भाषा में ऐसे शब्दों के व्यवहार का अभ्यास नहीं। ऐसी बातें प्रायः अंग्रेज़ी के अखबारों और पुस्तकों में ही रहती हैं। हिन्दुस्तानी में ऐसे विचार प्रकट करने से बात में कुछ जोर नहीं आता।

आगे बढ़े तो याट-क्लब की इमारत आ गई।

खत्री ने कहा—'सुनते हैं, इस क्लब का मेम्बर कोई हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता। क्या बदतमीज़ी है ?'

मुरारी ने उत्तर दिया—'अरे भाई, सुनते हैं, कोई जमाना था, जब इस नैनीताल में हिन्दुस्तानियों को इस माल रोड पर चलने की इजाज़त नहीं थी। हिन्दुस्तानी निचली सड़क पर जानवरों के साथ चलते थे। अब हिन्दुस्तानी मिनिस्टरों की मोटरें इस सड़क पर जाती देख अँग्रेज़ों के दिल पर साँप लोट जाता होगा। कॉंग्रेस गवर्नमेंट को चाहिये कि इसके सामने एक ऐसा क्लब बनाये जिसमें अँग्रेज़ों को घुसने की इजाजत न हो।'

इस प्रकार की बातों से दोनों के मन कुछ ऐसे खिन्न हो गये कि सिनेमा जाने की इच्छा न रही। मुरारी की बाँहें अभी फड़क रही

थी। उसने सुझाया—'चल कर कैपिटल के रेस्तराँ मे अँग्रेज़ो के मुकाबिले में बैठे—यह क्या कि जितनी बढ़िया जगहे है, सब पर सालो ने कब्जा कर रखा है ! देखे, किसके कलेजे में दम है ? रणवीर और निगम को बुला ले । आज जो होना है हो जाय ! देखा जायगा ।'

मुरारी और खत्री दोनो ही मारते खाँ थे । रणबीर और निगम उनसे भी दो कदम आगे थे । चारो मित्र एक साथ कैपिटल मे जगह घेर कर जा बैठे । पहले चाय मँगाई और उसके बाद कुछ दूसरी चीजे । कोई अँग्रेज आता तो उसकी ओर घूर कर चुनौती की दृष्टि से देखते । किसी ने उनकी दृष्टि की परवाह न की । किसी ने देखा तो जान-पहचान समझ, मुस्करा कर 'गुड ईवनिंग' कर सज्जनता प्रकट करदी ।

बाहर कुछ बूँदाबाँदी होने लगी थी । इससे यो भी बैठे रहे । दो घण्टे बीत गये । मन का आवेश कुछ हल्का हुआ । खत्री ने कहा—'अब आये है तो सिनेमा का दूसरा शो देख कर ही लौटेंगे ।'

निचली मंजिल मे ही सिनेमा है । सब लोग गये और एक साथ बैठे । सिनेमा ख़त्म हो ही रहा था कि खत्री ने अपने साथियो को उठ चलने का संकेत किया—भीड के साथ निकलने पर रिक्शे नहीं मिलेगे । सर्दी कडाके की पड़ रही थी ।

सिनेमा के सामने पुलिस के हवलदार ने एक ओर रिक्शे और दूसरी ओर डाण्डियाँ लाइनों मे लगवा दी थीं कि आपस मे उलझे नहीं । पहले दो रिक्शो के समीप जा चारों मित्रों ने बैठना चाहा । इतने में खेल ख़त्म हो गया ।

दोनो ही रिक्शो के कुली उन्हें ले जाने को तैयार न थे । मुरारी ने धमकाया—'चलना होगा ! चलेगा कसे नही ?'

'हमारा रिक्शा लगा है, हजूर यह रिक्शा रिजब है !'

मुरारी ने फिर धमकाया—'नहीं, चलना होगा ! उठाओ रिक्शा !' वह रिक्शे पर बैठने को हुआ।

कुली ने फिर एतराज किया—'नही, साहब. हम नही जायगा। हमारा रिक्शा गोरा साहब का रिजब है। तीन फुल्लीवाला (कँधे पर तीन स्टार लगाने वाला कैप्टेन) गोरा साहब का रिजब है।'

मुरारी का क्रोध सीमा लाँघ गया। गाली दे कर उसने कहा— ………'चलता है कि नही ? तेरे तीन फुल्ली वाले गोरे की ऐसी-तैसी !'

रणवीर का हाथ चल गया। उसने एतराज करने वाले कुली को दो थप्पड लगा कमर में एक लात जमाई। मुरारी ने दूसरे कुली को दो चपत दिये। साहब लोग भी चले आ रहे थे और रिक्शे वाले उनके सामने अपने रिक्शे जबरदस्ती किये दे रहे थे। अँग्रेज़ो के सम्मुख अपनी यह उपेक्षा और अपमान उनके लिये असह्य था। चारों आदमी दोनों रिक्शों में दो-दो करके ज़बरदस्ती बैठ गये। दोनों रिक्शो के कुली असन्तोष से बडबडाते हुये मार के डर से अपने रिक्शे ले सब से पहले दौड पडे।

मल्लीताल से तल्लीताल पहुँच, बाजार की चढ़ाई चढ, रिक्शा मुरारी के मकान पर पहुँचा। गोरे साहबो के सामने मान-प्रतिष्ठा-सहित सबसे पहले रिक्शा ले कर चले आने से मुरारी का मन संतुष्ट था। एक रुपया रिक्शे का मुनासिब किराया उसने दिया और दो रुपये और दे कर कुलियों से कहा—'यह लो इनाम ! समझे ! अब अँग्रेज़ साहब को अपने रिक्शे पर मत चढ़ाना ! हमेशा हिन्दुस्तानी साहब को रिक्शे पर चढ़ाओ ! समझे ! अब अँग्रेज का राज नही है। कांग्रेस का राज है ! समझे ! अब अँग्रेज की टोपी को सलाम मत करना !'

फिर अपनी टोपी की ओर उँगली से संकेत कर उसने कहा—'अब इस टोपी को सलाम करना ! समझे !'

'तीन फुल्ली वाले साहब' की सवारी न बन सकने का गिला कुलियों के मन में न रहा। बिजली के लैम्प की रोशनी में उसके माथे पर पसीने की बूँदें और आँखों में प्रसन्नता चमक रही थी। हाथ-जोड़, दाँत निकाल, कुलियों ने उत्तर दिया—'बौत ठीक है, साब ! हमारा तो ये भी माई बाप है वो भी माई-बाप है ! हजूर हम तो कुली आदमी है।'

मकान का तंग जीना चढ़ने से पहले मुरारी ने खत्री के कंधे पर हाथ रख उत्साह में कहा—'भाई अपना राज अपना ही राज होता है। देखा, कितना फर्क पड़गया कांग्रेस सरकार होजाने से ?

११

सत्य का मूल्य—

कौशम के समीप यमुना के पूर्वी तट पर दिनाक की पैतृक भूमि थी। भूमि परिवार के पालन के लिये पर्याप्त थी। हल, बैलो की जोडी, दो गाय और परीश्रम द्वारा भूमि से अन्न उत्पन्न करने के सभी साधन थे। भूमि की उपज का पंचमांश भूमि कर के रूप में ज्येष्ठक को दे उसका और स्त्री पुत्रों का निर्वाह दूसरे कृषकों की भांति हो जाता था। परन्तु वह सन्तुष्ट न था।

दिनांक के मन में तृष्णा थी। भोग के अधिक साधन संचय कर अधिक सम्पन्न और सुखी बनने का स्वप्न उसके मनमें समाया रहता। धन संचय कर अधिक भूमि मोल ले वह दूसरों से खेती कराने वाला भूमिपति बनना चाहता था। मिट्टी की दीवारों पर फूस से छाये अपने छप्पर के स्थान में वह एक बाग में पक्का प्रासाद बनाना चाहता था। अपने ग्राम के जुलाहे द्वारा बुने मोटे वस्त्रों के स्थान में वह मगध, कौशल विदिशा और कलिंग के रेशमी वस्त्र पहनना चाहता था। वह चाहता था

दासिया उसके शरीर पर चन्दन का लेप कर सिहल के मोतियो की शीतल मालायें उसके गले मे पहनाये, चन्दन के पंखे से उसे वायु करे। उसके केशो मे अनेक ऋतुओ के अनुकूल सुगन्ध लगाई जाय। सवारी के लिये रथ हो। रथ सुन्दर रंगीन वस्त्रो से ढका हो। रथ के सुन्दर बैलो के सींग तेल से चिकने और काले हो। बैलों की पीठ पर कामदार झूलें पडी हों। सुख सम्पति के वे सभी साधन जो उसने विदिशा नगरी मे अपनी कृषिका अन्न वेचने के लिये जाने पर देखे थे और जिन्हे पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व जाने वाले राजपथ पर महाश्रेष्ठियो के सार्थों मे देखा था, उसकी महत्वाकांक्षा बन उसकी कल्पना मे समाये थे।

इन साधनों को प्राप्त करने के लिये दिनांक ग्रीष्म, वर्षा और हेमंत ऋतुओ मे सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरंतर परीश्रम करता रहता। शरीर का कष्ट आशा की उमंग मे अनुभव न होता। सम्पत्ति के विस्तार के लिये वह कुछ धन बटोर पाता कि भाग्य से वर्षा ऋतु में तटोंतक भरी गगा में सैकडो योजन दूर होने वाली वर्षा का जल और बह आता। गगा अपने तटो की मर्यादा उलंघन कर जाती। बाढ़ में दिनांक के छप्पर-छाजन बह जाते। कभी समय पर वर्षा न होने से उसकी खेती ऐसे सूख जाती कि उपज खेत मे डाले गये बीज से भी कम रहती। ऐसी अवस्था मे दिनाक अत्यन्त निराश हो जाता। परन्तु उसके अन-जाने मे, उसके शरीर मे जाने वाला प्रत्येक श्वास बाहर जाते समय निराशा का कुछ भाग ले जाता और जीवन का अवलम्ब और लक्षण आशा फिर जाग उठती। ऐसे ही सघर्षो से दिनांक प्रौढ़ावस्था तक पहुँच गया। उसकी आकांक्षा और कल्पना अपूर्ण ही रही।

युवावस्था मे सुख और सम्पत्ति प्राप्त करने के दिनांक के प्रयत्न असफल होजाने पर प्रौढावस्था में भी वह फिर वही प्रयत्न करने लगा। उसे आशा थी, जो कुछ वह स्वयम नहीं पा सका, उसकी

सन्तान पायेगी और वृद्धावस्था में वह अपने अन्तिम दिन सुख और विश्राम से बिता सकेगा। परन्तु इसी समय सम्पूर्ण नगरों, जनपदों और ग्रामों मे समाचार फैलगया कि चक्रवर्ती, दिग्विजयी, सम्राट श्री हर्षवर्धन दिशाओं के अन्त तक पृथ्वी विजय कर निष्शत्रु हो तथागत भगवान बुद्ध के करुणा और त्याग के धर्म मे दीक्षित हो, भिक्षु भेस धारण करने जा रहे हैं।

इस विचित्र समाचार से दिनांक की कल्पना और विचार क्षुब्ध हो गये। अपने खेतों मे हल चलाते समय, निराई करते समय, जंगल से ईंधन बटोरते समय और रात में थक कर पुआल की चटाई पर बिछी कथरी पर लेटे हुये उसे घोड़े, पालकियों और रथों से घिरे, विशाल हाथी पर बैठे, चमचमाते रत्न जड़े मुकुट पहने सम्राट श्री हर्षवर्धन दिखाई देने लगते, जिनकी सम्पत्ति शक्ति और सुख के साधनों का अन्त नहीं, जिन्हें इच्छा करने से ही सब कुछ प्राप्त है, वही महाराज अपनी इच्छा से सबकुछ त्याग, भिक्षु के चीवर पहनने के लिये तथागत के त्याग धर्म में दीक्षित होंगे? और दिनांक को कल्पना में भिक्षु के गेरुआ चीवर पहने, हाथ में लोहे का भिक्षा पात्र लिये सिर मुण्डे भिक्षु का शान्त, सुखी चेहरा दिखाई देने लगता।

सम्राट श्री हर्ष की भक्ति तथागत के धर्म में होजाने के कारण तथागत के शिष्यों को विशेष प्रोत्साहन मिला। नित्य सहस्रों विद्वान भिक्षुओं का सत्कार राज्य कोष से होता। राज्य का अपरिमित धन सहस्रों बौद्ध भिक्षुओं से भरे मठों के लिये बहने लगा और सम्राट की उदारता का समाचार सुन पृथ्वी के कोने-कोने से गेरुआ वस्त्र धारण किये भिक्षुओं के दल सम्राट श्री हर्ष की राजधानी की ओर प्रवाहित होने लगे।

इन संसार त्यागी भिक्षुओं के लिये पुष्पउद्यानों से घिरे राजप्रासाद और पल्ली ग्राम में गोबर और खाद के ढेर से घिरे फूस के छप्पर

एक समान थे। यह भिक्षु अपने उपदेशामृत की करुणा, आकाश से बरसने वाले जल की भाँति समान रूप से सभी स्थानो मे मनुष्य मात्र पर बरसाते थे। उनके प्रसन्न मुख मण्डलो पर दुख से मुक्ति और वैराग्य से प्राप्त शान्ति विराज रही थी। वे अपने आनन्द का भाग सभी को देने के लिये आतुर थे। वे उपदेश देते।

हे संसार के दुखी प्राणियो, राग के समान जलाने वाली दूसरी अग्नि नहीं। द्वेष के समान कलुषित करने वाला मल नही। पॉच स्कधो के समान दुख नही। शान्ति से बढ़ कर सुख नहीं। हे मनुष्यो, भूख सबसे बड़ा रोग है, ससार परम दुख है, यह जानने वाला ही निर्वाण का परम सुख पाता हे 'सुसुखवत ! जीवाम येन्स नो नत्थि'—अहो, हम लोगो के पास कुछ नहीं, और ! हम कैसे सुख पूर्वक जीते हैं। हम आभास्वर देवताओ की तरह प्रीतिका भोजन करते है। हे कृपको, खेत का दोष तृण है वैसे ही मनुष्य का दोष इच्छा हे। यह शरीर अनित्य है। यह संसार अनित्य हे। अनित्य से पाया अनित्य क्या स्थिर होगा ? माया को छोडो, ज्ञान को प्राप्त करो ! —बोधिवृक्ष के नीचे तप कर तथागत न यह ज्ञान प्राप्त किया है। दुखो से मुक्ति पाने के लिये बुद्ध की शरण आवो। धर्म की शरण आवो ! संघ की शरण आवो !'

प्रसन्न मुख और शांतचित्त भिक्षुओं को देख और उनका उपदेश सुन दिनाक को अत्यन्त ग्लानि हुई। उसके मनमें पश्चाताप हुआ कि सम्पूर्ण जीवन सुख की आशा मे वह दुख के कारण बटोरने के लिये दुख के मार्ग पर ही चलता रहा। भिक्षुओ के उपदेश से वह अनन्त सुख प्राप्ति की बात सोचने लगा। ऐसे सुख को पाने का उपाय जिसकी तुलना मे चक्रवर्ती महाराजाधिराज सम्राट की अतुल सम्पति और शक्ति भी तुच्छ थी। भिक्षुओ के मुख से सुनी तथातग के जीवन की कथाओ और उपदेशो का मनन करते रहने से दिनाक की कल्पना में

सदा ही बोधि वृक्ष की छाया में समाधिस्थ, प्रकाश पुंज से घिरा बोधि-सत्व का रूप दिखाई देता रहता।

जिस सुख को दिनांक सम्पूर्ण जीवन के प्रयत्न से न पा सका, उससे भी महान सुख को केवल जान लेने (ज्ञान) के उपाय मात्र से पा लेने के विश्वास से वह अत्यन्त उत्साहित हो उठा। उस परम ज्ञान को दूसरे के मुख द्वारा और दुर्गम तर्क से प्राप्त करने की अपे ा उसने अपने ही तप से पाने का निश्चय किया। वैराग्य की ओर प्रकृत्ति और ज्ञान की तृष्णा से दिनांक अपनी भूमि की खेती और परिवार की चिन्ता का बोझ अपने किशोर बालको और अपनी प्रौढ़ा स्त्री पर छोड, तप द्वारा परमज्ञान के असीम सुख की खोज में चल पडा।

गंगा के निर्जन तट पर एकान्त देख एक गूलर के वृक्ष के नीचे उसने समाधि लगा ली। उसने निश्चय किया, परम ज्ञान द्वारा प्राप्त परम सुख और निर्वाण में ही उसकी समाधि परिवर्तित हो जायगी।

निर्जन गंगा तट पर सूर्यास्त होगया। गूलर के वृक्ष पर घोसला बनाये सैकडो पक्षियो के कलरव से कुछ समय के लिये वह स्थान गूंज उठा। चारो ओर फैले पतसर के जगल की वायु सूर्य की किरणों से पायी ऊष्मा खो शीतल हो गई। घने अंधकार में अनेक शृगाल और दूसरे जीव गंगा का जल पी गूलर के नीचे गिरे फल को खाने के लिये घूमने लगे। परन्तु दिनांक पद्मासन से बैठा निरंतर ध्यान करता रहा—सत्य क्या है? परम सुख क्या है ? और दुखों से मुक्ति कैसे हो ? फिर सूर्योदय से पूर्व वृक्ष पर पक्षियों का कोलाहल हुआ। सूर्य की कोमल किरणों ने उग्रता ग्रहण की। मध्यान्ह हुआ। फिर सूर्य पश्चिम की ओर ढलने लगा। परिवर्तन के इस चक्र में समाधि में स्थिर दिनांक परिवर्तन से मुक्ति अमरत्व को खोज रहा था।

इस प्रकार सोलह सूर्योदय और सत्रह सूर्यास्त हो गये। दिनांक

दृढता से समाधि मे स्थिर ज्ञान के प्रकाश का आह्वान और प्रतीक्षा करता रहा । शारीरिक दुखों की अनुभूतियाँ अत्यन्त उग्र हुईं और फिर क्षीण होने लगीं । दिनांक ने संतोष अनुभव किया वह दुखो से परास्त न होकर दुखो की अनुभूति से मुक्ति लाभ कर रहा है । वह निरतर ध्यान मग्न था । परन्तु उसकी ध्यान और विचार की शक्ति निश्क्रिय सी होती जा रही थी । वह बेसुध सा होता जा रहा था·· ।

सुध आने पर उसने देखा—उसके पांव समाधि के आसन मे बधे रहने पर भी उसकी पीठ लुढ़क कर वृक्ष के तने से सट गई है और वैसे ही उसका सिर भी । ज्ञान का प्रकाश अभी वह देख न पाया था । अपनी असफलता से उसे ग्लानि हुई । उसने स्वीकार किया वह विचार और ध्यान मे असमर्थ होगया है । परन्तु विचार, ध्यान और तप द्वारा ज्ञान प्राप्ति का उसका निश्चय दृढ था । उसने मनको समझाया—विचार और ध्यान के लिये सामर्थ्य पाना आवश्यक है । शरीर के निष्क्रिय और निश्चेष्ट होजाने पर वह विचार और ध्यान कैसे करेगा ?

स्वयम ही उसके हाथ फैल गये और शरीर को सामर्थ्य देने के लिये वह पृथ्वी पर गिरे गूलर के फल उठा मुख में ले चूसने लगा । बहुत देर तक ऐसा करने पर विचार सकने का सामर्थ्य उसने पाया । उसे जान पडा, दुराग्रह से अपनी विचार शक्ति को नष्ट करना व्यर्थ है । जो है, उसे बलपूर्वक अस्वीकार कर, कल्पना से कुछ नयी बात निकालने का दुराग्रह भी व्यर्थ है । दुख से भय ही दुख है । बहुत समय तक गूलर के फलो का रस चूसता वह इसी प्रकार के विचारो मे डूबा रहा और फिर व्यर्थ कष्ट सहन द्वारा वास्तव को कल्पना से अवास्तव मान लेने का विचार छोड चल दिया ।

× × ×

दिनाक ने देखा । प्रतिदिन और रात्रि गंगा के वक्ष पर पाल उडाती सैकडो नावे गङ्गा-यमुना के संगम की ओर चली जा रही थी उसने राज

मार्ग पर भी प्रत्येक ग्राम जन पद और नगर से पथिकों की धाराये आ-आकर नदियो के संगम की ओर बहने वाले जन प्रवाह में सम्मिलित होते देखीं। उसने कौतुहल से इस विषय में यात्रियो से प्रश्न किया। उत्तर में यात्रियों ने भी विस्मय से प्रश्न किया—क्या तुम नही जानते चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्षवर्धन ने गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर पुण्य पर्व का संयोजन किया है। इस सत्संग मे धर्म के तत्वों का निश्चय होगा और इस पर्व पर सम्राट अपनी अतुल द्रव्य सम्पत्ति भिक्षुको को दान कर देंगे। इस दान के पश्चात पृथ्वी पर फिर कोई याचक न रह जायगा।

दिनांक भी रथो, पालकियों और दूसरी सवारियों से भरे राज मार्ग पर सहस्त्रों सम्पन्न गृहस्थियो, गेरुआ वस्त्र धारण किये भिक्षुओ और द्रव्याभिलाषी साधारण दीन जन के साथ सङ्गम की ओर चल दिया।

दिनांक ने देखा—गङ्गा-यमुना के सङ्गम की दक्षिण तट की रेती पर प्राय: एक योजन तक मनुष्य ही मनुष्य फैले हुये थे। पृथ्वी के आदि-अन्त से नाना वर्ण और रूप का जन समुदाय धर्म का तत्त्व जानने के लिये उत्सुक हो सङ्गम पर आ घिरा था। देश विदेश के व्यापारी भी अपने अद्भुत और विचित्र पदार्थ ले, आकर्षक दुकाने सजाये ससार से विरक्त होते धर्माभिलषियों को संसार की ओर आकर्षित करने का यत्न कर रहे थे। समारोह के बीचोंबीच एक विशाल पण्डाल था। जिसमें दस सहस्त्र भिक्षुओं के एक साथ बौद्ध सूत्रो का पाठ करने की ध्वनि से आकाश आठों पहर गूँजता रहता था।

समारोह के विस्तार में सब ओर स्थान-स्थान पर तथागत बोधि सत्व की जीवन गाथा के चित्र, उनके जीवन के उपदेशों को प्रचारित करते हुये बने थे। स्थान-स्थान पर बौद्ध धर्म के नियमो और करुणा धर्म पालन करने की राज-आज्ञाओ का उल्लेख बहुत बडी-बडी शिलाओ और भीतो पर सम्राट श्री हर्षवर्धन की मुद्रा सहित किया

गया था। पण्डाल के तोरण पर नगाड़ों की चोट से निरंतर घोषणा हो रही थी '—चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्ष द्वारा स्वीकृत तथागत बुद्ध के उपदेश के हीनयान मार्ग के सम्बन्ध मे जिस किसी व्यक्ति को सन्देह अथवा शंका हो वह राजगुरू महाविद्वान चीनी यात्री अर्हत इत्सिग से शास्त्रार्थ करे '। शास्त्रार्थ मे विजयी होने वाले को सम्राट की ओर से पण्डाल में बना स्वर्ण मुद्राओं का पर्वत और असंख्य बहुमूल्य रत्नो की भेंट दी जायगी और शास्त्रार्थ में पराजित होने वाले का सिर, सद्धर्म की निन्दा के अपराध मे, कृपाण से काट कर दिया जायगा। राज-आज्ञा से धर्म की निन्दा करने वालो का ह्रास हो कर सब ओर धर्म की विजय हो रही थी।

दिनाक भी पण्डाल मे गया। पण्डाल का तीन चौथाई भाग गेरुआ रंग का चीवर् धारण किये भिक्षुओ से भरा था। उस्तरे से मुंडे भिक्षुओं के सिर ऐसे जान पडते थे जैसे गेरुआ मिट्टी पर कोरी हण्डियाँ दूर तक औंधा कर रख दी गई हो। एक चौथाई भाग मे अनेक प्रकार के सुन्दर और कोमल आसनो पर रंगीन रेशमी वस्त्रो और आभूषणो से शृंगार किये सामन्तवर्ग और सम्पन्न श्रेष्ठि समाज आसीन था और उनके पीछे साधारण जन समुदाय। केन्द्र मे ऊंचे मंच पर सोने के छत्र के नीचे, सोने के सिहासन पर,चंवर धारी यवनियो और खड्गधारी शरीर रक्षको से घिरे सम्राट ज्ञान की चिन्ता से गम्भीर मुख लिये बैठे थे। उनके सम्मुख स्वर्ण की चौकी पर कुशासन बिछाये अद्भुत रूप के चीन देश वासी राज गुरु उपस्थित थे। एक ओर स्वर्ण मुद्राओ का पर्वत और रत्नो के थाल सजे थे। दूसरी ओर लाल वस्त्र धारण किये कधे पर दीर्घ कृपाण लिये जल्लाद प्राण दण्ड देने के लिये उपस्थित था।

बौद्ध भिक्षुओ ने सूत्र पाठ किया और राजगुरू ने विचित्र उच्चारण से धर्मोपदेश दिया—असार को सार और सार को असार समझने

वाले, झूठे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार को नहीं प्राप्त कर सकते। ......मनुष्य जैसे बुलबुले को देखता है, जैसे मरुभूमि मे जल के भ्रमको मिथ्या जानता है वैसे ही जो मनुष्य इस मायामय लोक को जानता है वही अमर होता है। तोरण पर नगाडे की चोट से शास्त्रार्थ के लिये फिर चुनौती दी गई।

सामन्त वर्ग और सम्पन्न समाज के पीछे से ऊंचा परन्तु कांपता हुआ स्वर सुनाई दिया और लोगों ने देखा एक ग्रामीण बांह उठाकर कुछ कह रहा है।

व्यवस्था की रक्षा करने वाले शस्त्रधारी राज सेवक उस ग्रामीण दिनांक को राजसिंहासन के सम्मुख राजगुरु के आसन के समीप ले आये। ग्रामीण के पागलपन से विशाल सभा विस्मित रह गई।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने ग्रामीण से प्रश्न किया—'तुम राज गुरु से धर्म के तत्त्व पर शास्त्रार्थ अथवा शंका करोगे ?

दिनांक ने सिर झुका कर हामी भरी।

शास्त्रार्थ में पराजय का दण्ड मृत्यु है जानते हो ?—मंत्री ने चेतावनी दी।

दिनांक ने पुनः हामी भरी।

राजगुरु के समीप बैठे एक शिष्य ने राजगुरु की ओर से उनसे प्रश्न किया—'हे ग्रामीण तुम किस मत के अनुगामी हो; तुम्हारी प्रतिज्ञा क्या है ?'

दिनांक आंखे और ओठ फैलाये मूक रह गया। ग्रामीण की इस जडता से भिक्षु समाज में उसकी अबोध धृष्टता के प्रति घृणा को मुस्कान फैल गई। नागरिक समाज में से कुछ ने मुस्करा दिया और कुछ के मुख पर भय मिली करुणा का भाव छा गया।

ग्रामीण को उत्साहित करने के लिये राजगुरु ने कृपा से मुस्करा कर प्रश्न किया—'हे सौम्य, तुम्हारी शंका क्या है ?'

सचेत हो दिनाक ने उत्तर दिया—'आप जो कहते है वह सत्य नहीं। यह ससार मिथ्या माया नही।'

राजगुरु के शिष्यने फिर प्रश्न किया—'आयुष्मान, तुम्हारी शंका के लिये शास्त्र का प्रमाण क्या है ?

दिनांक को मूढ़ता से चुप देख राजगुरु ने पुनः सरल मुस्कान से उसे उत्साहित किया—'सौम्य, तुम्हारा तर्क, मत अथवा अनुभव क्या है ?'

'ऐसा मैंने देखा है !' उत्तर दे दिनांक मूक रह गया।

सम्पूर्ण सभा भी इस विचित्र परिस्थिति में मौन थी और सम्राट अपने सिंहासन की पीठ से सहारा लिये बाये हाथ की बंद मुट्ठी पर ठोडी रखे इतनी सी बात कहने के लिये मृत्यु का भय न करने वाले साहसी ग्रामीण की ओर दृष्टि किये उसको अभिप्राय जानने का यत्न कर रहे थे।

उत्सव के अध्यक्ष, राजमंत्री ने सम्राट की ओर देखा और ग्रामीण को सम्बोधन किया—'तुम जानते हो राजगुरु से शास्त्रार्थ मे पराजय का दण्ड मृत्यु है। उसी दण्ड के तुम अधिकारी हो !'

लाल कपड़े पहने वधिक का हाथ अपनी कृपाण की मूठ पर दृढ़ हो गया। और खड्ग ने तनिक कांप कर तत्परता प्रकट की।

'परन्तु मैं पराजित नही हूँ !'—ग्रामीण दिनांक ने उत्तर दिया। सभा पर पुनः वितृष्णा भरी मुस्कान फिर गई।

राजगुरू के शिष्य ने पुन. प्रश्न किया—'हे सौम्य, यदि तुम पराजित नही हो तो अपनी युक्ति, तर्क और प्रमाण कहो !'

'यदि मेरा अज्ञान राजगुरू की विजय है तो दिनांक ने स्वर्ण और रत्नो की ओर उंगली से सकेत किया—इस मायामय असार द्रव्य को स्वीकार करना ही उनके उपदेश का पराजय है। यदि राज-गुरू का उपदेश सत्य हे तो यह मायामय असार द्रव्य मेरे लिये दे

और असार अनित्य जीवन से मुक्ति की ओर स्वयम जांये !'—दिनांक ने लाल कपडे पहने बधिक की ओर संकेत किया । सभा में पहले भय का सन्नाटा और फिर कौतुहल पूर्ण परिहास की स्फूर्ति फिर गई। राज गुरू भी मुस्करा दिये।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने सम्राट के सम्मुख सिर नवाकर प्रार्थना की—'पृथ्वी पर न्याय के रक्षक चक्रवर्ती सम्राट श्री देव न्यायासन से आज्ञा दें !'

सम्राट ने मानों विचार तंद्रा से जाग उत्तर दिया—'इस विषय में पुनः विचार हो ! इस समय सभा भंग की जाय !'

× × ×

पराजय के लिये प्राणदण्ड की अवज्ञा कर परमज्ञानी अर्हत राजगुरू से शास्त्रार्थ करने का दुस्साहस करने वाले अबोध ग्रामीण का वृत्तान्त रात भरमें ही जन समुदाय में फैल गया। दूसरे दिन सम्राट की धर्मसभा में जनता टूट पडी। सम्राट के सिंहासन ग्रहण करने पर लोहे की श्रृंखला से बांधकर दिनांक को सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया गया। दिनांक के मुख पर निर्भय और शान्ति विराज रही थी।

करुणा का व्रत लिये सम्राट रातभर इस अबोध ग्रामीण की बात सोचते रहे थे। राजमंत्रियों और राजगुरु को सम्बोधन कर सम्राट बोले—'अपराधी ने शास्त्रार्थ में पराजय नहीं पायी। क्योंकि वह शास्त्र से परिचित नहीं।'

राजगुरु ने कृपाकी मुस्कान से सम्राट का समर्थन किया—'देव का वचन यथार्थ है। श्रीदेव न्याय का रूप हैं। श्रीदेव की कृपा अनन्त है। एक रात भर इस अबोध ग्रामीण ने अपने सिर पर मृत्युका खड्ग अनुभव किया है। इसके मूल्य स्वरूप देव इस अबोध को एक लक्ष मुद्रा दान देने की कृपा करें।'

राजगुरु की उदारता से सभा अवाक रहगई। सम्राट संतोष और

करुणा से मुस्करा दिये। सब ओर से 'साधु-साधु, राजगुरु की जय हो!' की ध्वनि उठने लगी।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री के संकेत से प्रतिहारियो ने दिनांक को लोहे की सांकलो से मुक्त कर दिया। कोषाध्यक्ष ने आगे बढ़ एक लाख स्वर्ण मुद्रा की थैली प्रतिहारियों द्वारा सम्राट के सामने उपस्थित करदी और दिनाक को सम्बोधन कर कहा—'हे भाग्यशाली सौम्य, राजदान ग्रहण करने के लिये आगे बढ़ो।'

अपने ही स्थान पर खडे रह दिनांक ने कर जोड, सिर झुका विनय की—'पृथ्वी के पालक धर्मराज सम्राट क्षमा करें, सत्य का मूल्य मेरे प्राण हैं एक लाख मुद्रा नहीं।'

सम्राट ने विस्मय से राजगुरु की ओर देखा-राजगुरु का मुख विचार से अत्यन्त गम्भीर होगया था··· ··।

१२

सआदत—

छः बरस से इस कमरे में बैठता हूँ । इसके लाल फ़र्श पर अनेक प्रकार के जूते, चप्पल और नंगे पांव आते जाते है । कोई ऐसा चिन्ह शेष नहीं रहता जो किसी की याद दिला सके । परन्तु भीतर खुलने वाले दरवाज़े के समीप फर्श पर बिल्ली के पंजों के दो अमिट निशान है। जब तक फर्श है, यह निशान रहेंगे। बनते समय जब फर्श अभी कच्चा और गीला था, बिल्ली यह निशान बना गई। फ़र्श पर अब यदि कोई निशान पडता है तो स्वयम ही या पोंछ देने से मिट जाता है।

फ़र्श पर इन अमिट निशानों को देख प्रायः अनेक बीती हुई बातें याद आजाती है और एक बात बहुत बचपन की, जब अभी स्कूल की शिक्षा का फन्दा गले में नहीं पडा था ।

पिता जी जंगलात के महकमे में अफसर थे। कभी-कभी दौरे में हम लोगो-यानि मां और बच्चों को भी साथ ले जाते ।

पहाडी जगह थी । सडक से कुछ हटकर, एक बावडी के समीप छोलदारियां लगी थीं। सडक कहने से मोटरो, लारियों, साइकलों

घोडागाडियो और पैदल आनेजाने वालों का जो सिलसिला ध्यान में आजाता है, वैसा कुछ न था। चढ़ाई उतराई पर कुछ चौडा सा रास्ता था। कभी दो-दो चार-चार पहाडी मर्द औरत-औरतें सिर पर और मर्द पीठ पर-छोटी सी गठरी लिये निकल जाते। कभी गले मे लटके घुघरू ठुनकाती दो-तीन खच्चरो के पीछे नारियल पीता या खच्चरों की पीठ पर गून लादने का मोटा डंडा कंधे पर लिये, कान पर हाथ रक्खे, मुख आकाश की ओर उठाये ऊँचे स्वर मे गाता कोई पहाडी निकल जाता। उस सडक पर इतनी ही सतर्कता थी।

कितने दिन वहाँ रहे? बचपन की स्मृति के आधार पर कह सकना कठिन है। परन्तु सडक और बावडी पर सुन-सुन वहाँ के गाने याद हो गये थे। स्कूल और कॉलेज में पढ़ी हिस्ट्री और कैमिस्ट्री भूल गयी पर उन गानो की कुछ पंक्तियाँ अब भी याद हैः—

'गोरियेदा मन लगया चम्बे दिया धारा ...'

(गोरी का मन चम्बे की घाटी में लग गया.......)

याः—'कुजा जाई पैयां नाटौण,
ठण्डे पाणी ते बांके न्हौण।
पल भर बाहि लैण ओ द्योरा!'

(उडते हुये क्रोच पक्षी नादौण में जा उतरे, वहाँ ठण्डे पानी में बांके जवान नहाते है। आओ देवर, ऐसी जगह तो पलभर बैठेंगे ही)

बावडी के समीप कुछ ऊँचाई पर मोटी फटी-फटी, पपडी से ढँके चीडो के ऊँचे वृक्ष अपनी शाखाओ मे डोरे जैसे पत्तो के सैकडों हरे चंवर डुलाते रहते थे। उन वृक्षों में से हवा गुजरने से निरंतर एक 'आह' की सी 'सूँक' सुनाई देती रहती। पेडो के नीचे एक कब्र थी। कब्र से हटकर ढलवान पर दो झोपडियो मे कुछ लोग रहते थे। उनके यहाँ भालू जैसे दो काले कुत्ते और कुछ मुर्गीयाँ थी। मै और

मुझसे तीन बरस छोटी बहिन प्राय: उनसे खेलते और उन झोपडियों में ही रमे रहते थे।

इस सब स्मृति का केन्द्र रही है सआदत। इतने वर्ष बीत जाने, दुनिया और जीवन बदल जाने पर भी वह बात साफ दिखाई देती रही। माथे का आंचल अगूठे और तर्जनी में ले, जमीन छू वह मां के सामने प्रणाम या सलाम करती थी। कुर्सी, पलग या पीढे पर बैठी माॅ के सामने वह जमीन पर बैठ जाती। सभ्य समाज के ढंग से सिमिट कर नहीं, पांव सामने फैले रहते और घुटने उठे हुये।

घुटनों पर रखे हाथों की उगलियां एक दूसरे में उलझी हुई, हथेलियां सामने की ओर। उसकी बडी बडी ऑखों के नीले कोयों और होठो पर एक अमिट हंसी रहती। चेहरा पकी खुर्मानी का रंग लिये लम्बा सा, ऑखों और ओठों के बीच उठी हुई सुघड नाक।

बहिन सीता को वह मुन्नी पुकारती थी। उसे देख सीता दौडकर चिपट जाती। प्राय: वह हमारी छोलदारियों में बनी रहती। मां से बातचीत करती। मां के अनेक काम-दाल बीनना, तरकारी काटना या दूसरे कामों में हाथ बटाती रहती। सबसे बडा काम था सीता को सम्भालना उसके पूर्ण वक्ष पर सिर रख सीता मां को भी भूल जाती।

इसके बाद बचपन में कितनी ही बेर अपनी सहेलियों और परिचितों से कहते हुये मां को सुना—'खूबसूरती तो एक दफे देखी है ? आहा, गूदडी में लाल ?

कहावत है—'नारी न मोहे नारी के रूपा' परन्तु इस रूप पर नारी भी मोहित थी। मां प्राय: ही सुनाती—'खूबसूरती एक बेर देखी है। कांगड़ा से नादौण जाने वाली सडक पर रानीताल के समीप चमोला पीर की समाध है। वहाॅ फकीरों के यहाँ एक बहू थी—सआदत ? मोती का सा रंग, ऐसे नख सिख की रानियो के यहाॅ भी क्या होगे। देखकर भूख प्यास भूल जाय एक बार ! और स्वभाव की ऐसी मीठी

कि दोनो बच्चे दिन भर उससे चिपटे रहते। बच्चो को भी क्या रूप की परख होती है भाई। किसी दूसरे के पास जाते ही न थे।

लडकपन में अपनी पढाई या खेल में लगे रहने पर भी कई दफे आड से मां को सम्रादत के रूप का बखान करते सुना—'मुझे तो ऐसे रूप की बहू चीथडों मे भी मिले तो अपने लडके के लिये आज ले आऊँ!' सुन कर मन में गुदगुदी सी उठ आती।

इसके बाद जब साहित्य और कविता मे रूप और हुस्न का ज़िक्र देखा और पढा, शकुन्तला, जूलियट और जुलेखा की कल्पना की तो सदा ही सम्रादत का मोती का सा रग और कलम की नोक से घडा नख सिख कल्पना में जाग उठता। जब जब अपने विवाह के विषय मे माता पिता को चर्चा करते सुना, सम्रादत का रुप आखो के आगे फिर गया। माता-पिता शायद सम्रादत को भूल गये परन्तु मेरे लिये वह रुप नित्य अधिक यथार्थ हो रहा था। मेरे लिये सौन्दर्य का अर्थ था—सम्रादत और स्वयम ही अपने ऊपर हंसी भी आती। बीस वर्ष में वह क्या रह गया होगा।

युनिवर्सिटी से डाक्टर की डिग्री मिली और उसके साथ ही युनिवर्सिटी मे लेक्चरार की जगह। अपनी कमाई का धन चाहे वह अधिक न था हाथ मे ले पुरुषत्व की एक अनुभूति और आत्म-विश्वास से गर्दन ऊँची हो गई। घर मे सदा चलते रहने वाले अपने विवाह के प्रसंग की बात स्वयम् मन में आने लगी। अपना घर, अपनी पत्नि और शायद एक सन्तान। एक उमंग सी अनुभव हुई।

वह सब तो होना ही था। उस वर्ष गर्मा की छुट्टियो मे पहले अकेले जा प्रकृति और उसके सौन्दर्य को देखने के लिये घूमने जाने का निश्चय किया।

मन का संस्कार सौन्दर्य के तीर्थ की ओर खींचे लिये जा रहा था, परन्तु स्वयम् अपना तर्क ही अपने ऊपर हस रहा था। क्या बीस

बरस बाद भी वह सौन्दर्य उस प्रकार होगा ? कौन फूल है जो मुर्झाता नही ? परन्तु फिर भी संस्कार खींचे लिये जा रहे थे। कांगडा पहुँचा। कांगडे से नादौण जाने वाली सडक बीस वर्ष मे वास्तव में ही सडक बन गई थी। अब उस पर मोटर लारी समय से आती जाती है। रानीताल पहुँच लारी से उतरा। पहाड के कंधे पर सरो के वृत्तों से घिरा छोटा सा ताल स्वप्न में देखे किसी परिचित स्थान जैसा जान पडा।

सौन्दर्य की प्रतीक सआदत को देखने की आशा और कल्पना न थी। केवल वह स्थान देखने की इच्छा थी जिसके सम्बन्ध से सौन्दर्य का एक आदर्श कल्पना में बन पाया था और चमोला के पीर के पुजारी फकीरो से मिलने की इच्छा थी जहाँ सौन्दर्य को अनासक्त भाव से, जीवन में पहले पहल जाना था। उस संस्कार से सौन्दर्य मेरे लिये सदा माता के स्थान पर, अपने से ऊँचा कल्पना में आराधना की वस्तु रहा।

राह पूछ कर चमोला के पीर की समाध की ओर चला। पहाडी की ढाल पर सांय-सांय करते चीड के हरे जंगल, नीचे सूखकर गिरी लाल पड गई चीड के पत्तों की सींखे, गर्ने की झाडियाँ, नीचे तलैटी में आम के पेडों का झुर्मट, सब कुछ स्वप्न के परिचित प्रदेश जैसा। सामने की ऊँचाई पर कुछ चौरस जगह में चूने से पुती चमोला की समाध घने चीडो के नीचे दिखाई दी। उसकी ओट फकीरों की झोपडियाँ। चीड के पेड स्वप्न मे देखे पेड़ों से बहुत ऊँचे और बडे जान पडे। तलैटी में बावडी को पहचान गया। जिस नाले में उसका जल बह जाता था अब भी पडोस की जगह से अधिक हरा, बनफशे के पत्तों से छाया था।

सोचा, सब कुछ वैसा ही है परन्तु मै अब वही नही हूँ। वे लोग भी वैसे न होगे, सआदत न रही होगी होगी भी तो स्मृति के लिये

रखे फूल की सूखी पंखुडियों की भाँति। मनुष्य का सौन्दर्य ही क्यों सबसे अधिक नश्वर है? नीचे बावडी पर एक बूढ़ा नीले रंग का तहमत कमर में लपेटे, बगल में नेचा लिये बैठा था। समीप दो घडे रखे थे। नेचा गुडगुडाते हुये बूढ़ा दूसरे हाथ मे लिये बर्तन से बावडी का पानी उलीच-उलीच कर घडा भर रहा था।

पगडण्डी से बावडी पर उतर गया। फ़कीर मियाँ को पीठ पीछे से पुकारना ही चाहता था कि वही जोर से पुकार उठे।

पुकार सुनकर स्तब्ध सा रह गया। कानो को विस्मय हुआ। दूसरे ही पल फकीर मियाँ ने अपनी पुकार दुहराई—'सादत ओ! ओ, सादत!' और आवाज को पहाडियों मे दूर तक ठेल देने के लिये पुकार के साथ एक कूक की ठेल। पुकार के उत्तर मे सआदत आयेगी। उन बूढ़े मियाँ के अनुकूल ही सआदत की कल्पना मन में होने लगी—इन्हीं के समान जर्जर। दोनों एक-एक घडा उठा कर लौटेंगे। परन्तु वह अभी जीवित है। वह सौन्दर्य की स्मृति! उसे देखने की आशा से श्रद्धा का भाव आ कण्ठ रुक सा गया।

क्षण भर बाद ही उत्तर मे पुकार सुनाई दी—'आई नो बाप्पू ऊ ऽ ऽ ऽ।

शब्द की दिशा में आँखें उठ गई। कब्र के टीले पर कुछ दिखाई न दिया। परन्तु उस स्वर में उठते यौवन की तीव्रता और पुलक भ्रम की वस्तु न थे। पुकार की कूक वैशाख के कोयल की मादकता लिये। मन ने पूछा—क्या यह सआदत की पुकार है? क्या सआदत मेनका, उर्वशी और वीनस की भांति चिर यौवना सौन्दर्य की देवी है?

सम्मुख कब्र के टीले की ओट से नीचे उतरती पगडण्डी पर काले कपडे पहने एक नवयुवती सिर पर एक खाली घडा, औंधा रखे तेज चाल से फिसलती आती दिखाई दी। जैसे पत्थर लुडकता चला आ रहा हो।

और प्रत्यक्ष देखा सआदत का वह रूप ! मोतिया रंग, फैली हुई आँखों के बडे-बडे कोयो में भोला नीलापन, ऊँची नाक, पतले लाल ओंठ ! उमंग की लहर उठा देने वाले केन्द्र की तरह। गर्व से उठा वक्षस्थल, तेज चाल से चंचल। समीप पहुँच मेरी ओर उसने कौतुहल से देखा और सम्भवत: मेरी दृष्टि की तीव्रता से तनिक सिमिट गई।

साथ में लाया खाली घडा उसने धीमे बावडी की जगत पर टिका दिया। धीमे ही दो बोल उसने बूढ़े से कहे। उसके मुख पर वह मुस्कान ! भारी घडा दोनो हाथों से दुलार कर सिर पर रखा। एक बेर मेरी ओर देखा और टीले की चढाई पर चढ़ने लगी। शरीर में एक स्फुरन सी दौड गई।

जिह्वा पर आगई खुश्की निगल बूढे मियाँ को सलाम किया—'क्या बावडी से पानी नही आ रहा ?' बावडी में पानी बहुत धीमे धीमे सिम रहा था और घडा डूब सकने की गुञ्जाइश न थी।

माथे पर हाथ रख हजूर सम्बोधन से फकीर मियाँ ने उत्तर दिया—'गरमी के दिनों में कुछ रोज ऐसे ही तकलीफ होती है।'

परिचय-जगाने के लिये मियाँ से बीस वर्ष पूर्व का जिक्र किया। आँखों की मन्द ज्योति को हथेली की ओट से सहारा दे उन्होंने मुझे सिर से पैर तक देखा—'हाँ हजूर एक हिन्दू साहब जंगलात के बडे अफसर खेमे लगाकर दो महीने रहे थे। बडे गरीब परवर !'

'हमारी माँ कहती है—यहाँ एक सआदत बीबी है। माँ ने उन्हें सलाम कहा है ?' अपना साहस बढ़ाने के लिये मैंने कहा।

'हाँ हजूर इस लडकी की माँ ! अब बूढ़ी हो गई। पानी का घडा इस चढ़ाई पर अब हम लोगों से नहीं जाता। मांग ताग लाते है, इसी बेटी का सहारा है। इसे भी सआदत कहते है। माँ से मिलती सी थी।'

सआदत टीले पर से फिर लुढ़कती चली आ रही थी। अपने पिता से मुझे बातें करते देख उसका सकोच कम हो गया। दूसरा भरा घंडा उठा, हुलाश दे उसने सिर पर रख लिया। उसके शरीर का वह क्षणिक तनाव ! उस कमान के तनाव से एक अदृश्य बाण छूट कर मन पर आ लगा। जिह्वा पर एक खुश्की और शरीर मे स्फुरण सा हुआ।

बूढी सआदत को सलाम करने मियाँ के साथ टीले के ऊपर झोपडी मे गया। परिचय पा बुढिया ने सिर पर हाथ फेरा। माँ की बाबत बहुत कुछ पूछा। मेरे बचपन की कुछ स्मृतियाँ सुनाईं। सआदत चेहरे पर सहज संकोच और फैल हुई आँखों मे कौतुहल लिये मेरी ओर देख रही थी। उसने मेरे सत्कार के लिये दौग्घले और आक्खे (पहाडी अंजीर और स्ट्राबरी) पेश किये और एक कटोरे मे भैंस का दूध, बहुत सी मलाई छोड कर।

वह सामने आ बैठी। वैसे ही, जैसे उसकी माँ किसी समय मेरी माँ के सामने बैठा करती थी। शिकारी से निष्शंक हिरनी की तरह। आँखे उस पर टिक न पाती थीं। शायद, जैसे देखना चाहता था वैसे देखने का बल न था। और कितनी ही बातें जो माँ अपनी भावी बहू के सम्बन्ध मे कहती थी, याद-आ रही थीं और असामर्थ्य का एक भाव मन को शिथिल किये दे रहा था।

दोपहर पश्चात् की मोटर से कांगडा लौट जाना जरूरी था इस लिये समय रहते ही चला। सिर झुकाये सोचता जा रहा था। जैसे चोट लगने के कुछ समय बाद उसका दर्द उठता है। सौन्दर्य की कल्पना मे प्रतिष्ठा और गरिमा का जो भाव मस्तिष्क में लेकर आया था वह हृदय मे उतर उसे अस्थिर कर रहा था। सौन्दर्य पूजा की वस्तु न रह कर पीडा का कारण बन रहा था। सौन्दर्य की नश्वरता

के प्रति सहानुभूति उसके अस्तित्व की अनुभूति से एक विकलता में बदलती जा रही थी।

मन का उद्वेग दूर हो जाने पर भी सआदत के सौन्दर्य को भूला नही हूँ। और खयाल है कि नारी का सौन्दर्य उसके व्यक्तित्व की भाँति नश्वर नही। वह मनुष्य की परम्परा के समान ही शाश्वत है। जैसे फूल के बीज से फूल पैदा होता ही रहता है ....।

१३

साग—

जिला जेल की फॉसी की कोठडियो मे विशेशरप्रसाद और रहमान खॉ बन्द थे। जैसे लोहे के पिजरो मे बन्द सरकस के शेर और चीते को लोग विस्मय और कौतुहल से देखते है, वैसे ही बडे-बडे अंग्रेज़ सिविल सर्जन साहब, बगावत के पश्चात् जिले की व्यवस्था सुधारने के लिये आये अंग्रेज कलक्टर साहब, फॉसी की कोठडियो के जंगले के सामने खडे हो, इन कैदियो को देखते थे। परन्तु इन बडे अफसरो के मुख पर सरकस देखनेवालो का कौतुहल नहीं, घृणा थी।

जब यह दोनो कैदी जेल में आये इनके शरीर पर गोलियो के घाव थे। अंग्रेज सिविल सर्जन साहब ने कर्तव्य का पालन करने के लिये चीर-फाड कर विशेशरप्रसाद के घुटने से और रहमानखॉ की कमर से गोली निकाली और उनकी दवा दारू की। इस कर्तव्य का पालन करते समय साहब का चेहरा घृणा से छुहारे की भॉति सिकुड़ जाता।

अपने चारों ओर अदब से सहम कर खड़े हुये अपने हिन्दुस्तानी मुसाहिबों जेलर, जेल के डाक्टर, कम्पाउण्डर, जेल के बाबू लोगों और वार्डरों को सुना कर साहब टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में कहना न भूलते— 'इन बदमाश लोगों ने साहब लोग को बंगले में जलाकर मारा है।'

गोलियों के घाव ठीक हो जाने से पहले ही दोनों कैदियो के पांवों में साहब के हुकुम से बेड़ियां डाल दी गईं। उन पर तुरंत मुकद्दमा चलाकर सज़ा देने के लिये सेशनजज स्वयम जेल में तशरीफ़ लाये। शीघ्र ही पर्याप्त गवाही और सुबूत पेश हो जाने से उन्हें सेशनजज साहब ने आग लगाने और हत्या के अपराध में फांसी का हुकुम सुना दिया।

सरकार के कायदे से फाँसी की सज़ा पाये प्रत्येक व्यक्ति के लिये हाई-कोर्ट मे अपील की जाती हे। इन दोनों अभियुक्तों की ओर से भी अपील की गई। हाई-कोर्ट से फाँसी की सजा रद्द हो जाने या सज़ा पर हाई कोर्ट की मंजूरी की मोहर लग जाने की प्रतीक्षा में उन्हें लोहे की सींखचादार कोठरियो में बन्द रखा गया।

अंग्रेज़ सिविल सर्जन साहब जब भी इन कोठड़ियो के सामने आते, घृणा की सिकुड़न उनके चेहरे पर आ जाती। अधिक कुछ कहने का अवसर न होने पर —'मर्डरर (हत्यारे)' ! कह कर वह एक ओर थूक देते।

साहब का रुख देख ऐसे भयंकर कैदियों के ऊपर हिन्दुस्तानी जेलर, दूसरे अफसर और वार्डर सब विशेष सख्ती रखते थे। कभी कोई दूसरा कैदी उनकी कोठडी की छाया के समीप भी न जा पाता। उनके सामने आते ही सब अफसरों और वार्डरो के चेहरे पत्थर की तरह भाव शून्य और कठोर हो जाते।

विशेशरप्रसाद और रहमान खाँ अपने अपराध का बोझ जानते थे। क्षमा की उन्हें कोई आशा न थी। परन्तु निराशामय विस्मय था—

इन तमाम हिन्दुस्तानियो को उनसे द्वेष और भय क्यो है ? जिस अंग्रेज़ सरकार से वे लडने गये थे, उस सरकार का अंग्रेज़ तो कभी-कभी ही दिखाई देता है। वह सरकार तो स्वयम उन जैसो के ही हाथ से चल रही है। देश को आज़ाद किया जाय तो किससे ?

× × ×

अंग्रेज़ों को जलाकर उनका खून करने वाले इन हत्यारो के प्रति साहब लोगो का क्रोध और घृणा के कारण प्रतिहिंसा का अन्त न था। हाई-कोर्ट से दोनो को फॉसी लगाने की स्वीकृति आने पर इन्हें फॉसी की रस्सी पर छटपटाते देखने के लिये जेल के बडे साहब और बगावत से जिले की बिगडी अवस्था सुधारने के लिये आये दूसरे अग्रेज अफ़सर तड़के ही जेल पहुँचे।

मृत्यु सामने थी। मृत्यु की ओर उन्हें शत्रु की प्रतिहिंसा ले जा रही थी। शरीर देकर भी उस प्रतिहिंसा के सम्मुख स्वतंत्रता की भावना को जीवित रखने के लिये, परास्त न होने के लिये, उन्होने फॉसी के तख्ते पर पहुँच कर भी पुकार लगाई—इंकलाब ज़िन्दाबाद ! भारत माता की जय !

और उन्होने अपने चारो ओर खडे हिन्दुस्तानियो की ओर देखा—वे काठ की मूर्तियो की भाँति भावशून्य और स्थिर थे।

मृत्यु के क्षण मे भी अपनो से अपनेपन का कोई सन्केत उन्हे न मिला। केवल शत्रु के चेहरे पर दांत पीस लेने का संकेत था।

× × ×

विशेशर और रहमान के सम्बन्धी रोते हुये अपने आदमियो की लाशें पाने के लिये जेल के फाटक पर खडे थे। कलक्टर साहब ने वह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। बागियो की लाश का प्रदर्शन शहर मे होने से शान्ति भग होने का भय था।

सिविल सर्जन साहब के हुक्म से हिन्दुस्तानी जेलर हाज़िर हुये। साहब ने हुक्म दिया—'दोनों बाग़ियों की लाशें जेल के भीतर ही दफ़नाई जायँ।' दाँत पीस कर साहब ने कहा—'और इनकी लाश पर मर्सा का साग बोया जाय। साग तैयार होने पर सब साहब लोग के यहाँ भेजा जाय!'

× × ×

मर्सा का साग बहुत जल्दी तैयार हो जाता है। गहराई तक भुरभुरी कबरों की ज़मीन पा वह और भी जल्दी खूब ऊँचा उठ आया। एक दिन साग को खूब हरा भरा देख सिविल सर्जन साहब ने साग साहब लोगों को भेजे जाने की फ़रमाइश की।

जेल भर में खबर फैल गई—बाग़ियों की कब्रों का साग आज साहब लोगो के यहाँ गया है। रात पड़ने पर जेल बंद हुआ। बारकों मे बंद प्रत्येक कैदी के मन में साग की बात थी। प्रयेत्क कैदी कल्पना कर रहा था—हिन्दुस्तानी को अंग्रेज़ खा रहा है। परन्तु सभी कैदियों का मुँह बन्द था:—ऐसी बात कहने की रिपोर्ट अगर साहब के सामने हो जाय?

जेल के प्रत्येक अफसर के मन में साग की बात थी। प्रत्येक अफसर और वार्डर मन में कल्पना कर रहा था:—कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी को खा रहा है। परन्तु जेलर साहब दूधिया मसहरी में, पंखे के नीचे, दिल मे उबाल लिये तकिये पर मुँह दबाये पड़े थे। डाक्टर और कम्पौण्डर साहब चादर मे सिर छिपाये यही सोच रहे थे। बड़े वार्डर मैले फटे कम्बल पर आँख मूँदे, और केवल बीस रुपये माहवारपानेवाले नये सिपाही खुराँटी खटिया पर औंधा मुँह किये यही सोच रहे थे परन्तु शब्द किसी के होठो पर न था।

× × ×

जिले में अमन हो जाने की खुशी मे साहब लोगो के क्लब में

उस दिन डिनर था। हिन्दुस्तानी बैरे स्वच्छ तश्तरियों में वह हिन्दुस्तानी बाग़ियो की कब्र पर उगा साग साहब लोगों के सामने पेश कर रहे थे।

उन्होंने भी साग की कहानी सुनी थी। इन के चेहरे आतंक से सहमे हुये थे, पाँव में कमज़ोरी अनुभव हो रही थी परन्तु हाथ भय से साहब की सेवा में मैशीन की भाँति अपना काम करते जा रहे थे।

बात सब के दिल में थी परन्तु किसी के होठों पर न आ पाती थी। साहब के भय से और आपस मे एक दूसरे के भय से।

आह सब के दिल में थी। परन्तु आहें सब की अलग-अलग बिखरी हुई। निर्जीव श्वासो की भाँति उनके हृदय से निकल हवा में समाप्त हो रही थीं। एक साथ मिलकर वे आंधी की शक्ति न पा सकती थीं, क्योंकि उन्हें परस्पर भय था। भय :—अपनो से भय, शत्रु से भय, सब ओर भय……!

१४

पहाड़ का छल—

अपनी कम्पनी के साबुनों के नमूनो का सूटकेस ले पठानकोट से लारी पर डलहौज़ी पहुँचा। गिनी-चुनी, बिखरी हुई बेरौनक सी दुकानें देख कारोबार के लिये विशेष उत्साह न हुआ। कुली के सिर पर सूटकेस और चिलमची उठवाये, चकले पत्थरों से मढे सकरे बाज़ारों की चढ़ाई-उतराई पर कमर को दोनों हाथो से सहारा दिये, दूकान-दूकान फिरते दोपहर हो गई।

जून के महीने में भी उस कठिन परिश्रम से पसीना न आया। पहाडी हवा क्या थी, नई दुलहिन के मेंहदीरचे और सौंधाते हाथों से भी उसका स्पर्श अधिक सुखद था। सडक किनारे देवदार के भारी वृक्ष हरे रंग के विशाल मन्दिरों की भांति अपनी चोटी दृष्टि से इतनी ऊँची उठाये थे कि उन्हें देखने के यत्न में टोपी सिर से गिर जाय! हवा की हिलोर से उनकी टहनियां ऊपर नीचे झूमती थी जैसे सुलाने के लिये थपकियाँ दे रही हों। और! उत्तर-पूर्व में पहाडियो की चोटी पर! उत्तर

से पूर्व तक फैली धूप मे खिलखिलाती बरफ ! ·· कभी ख़याल आता, चाँदी की दीवार बनी है और मन में उमग आने से कल्पना होती—स्वर्ग की अप्सराओ ने अपनी उजली साडियाँ धो कर सूखने के लिये धूप में फैला दी है ।

कम्पनी से मिले प्रोग्राम मे चम्बा का दौरा भी था । देश से पहाड आने वाले व्यापारियो और एजेण्टो की अन्तिम सीमा चम्बा ही है । इसके आगे न तो सडकें ही है और न कोई शहर-बाज़ार ।

डलहौज़ी से सडक नीचे ही नीचे उतरती गई । टट्टू पर सवार होकर चलने से शरीर झकझोर हो जाता है और पैदल चलने से पाँव खून भर कर, झटकी हुई बोरी की तरह, भारी पड जाते है ।

चम्बा छोटी-सी पहाडी रियासत है । चम्बा शहर पहाड की तलहटी मे चट्टानो से सिर मारती, फेन उछालती रावी नदी के किनारे छोटे से मैदान में बसा है । नदी नदी न मालूम होकर बहते हुये झरने जैसी जान पडती है । चारो ओर उठे बीहड पहाडो से घिरी घाटी में हरियाली खूब है ,परन्तु डलहौज़ी की गरिमा नही है । ऐसा नही जान पडता कि संसार से वहुत ऊँचे पहुँच गये हों ।

देश के मैदानो से वडी-बड़ी सेनाओ का यहाँ चढ आना आसान नही । शायद इसीलिये किसी राजा ने अपनी स्वतंत्र रियासत बना निर्भय रहने के लिये यह प्रदेश चुना होगा ।

चम्बा में सराय है, परन्तु वह ठिंगने पहाडी लद्दू बैलो, खच्चरो और बकरियो से भरी थी । इसलिये गुरुद्वारे (सिक्ख मन्दिर) में ही शरण ली ।

भोजन कर सफ़र की थकान मिटाने के लिये लेट गया और नींद आ गई । जब सोकर उठा, चम्बा के आधे मैदान पर पश्चिम ओर की पर्वत-श्रेणी की छाया छा चुकी थी । मैदान के किनारे पहाड की जड़ के साथ साथ कुछ दुकाने है । और उनके पीछे दो वरो की चौडाई

तक बस्ती। ये ही बाज़ार है जिसे पहाड के लोग गर्व से 'नगर' कहते है।

सोचा—अभी संध्या में दूकानों का चक्कर हो जाय और कल सुबह ही डलहौज़ी लौट चले। सुबह की ठंडक मे चढाई आसानी से हो सकेगी।

पॉच-छः दूकानें देख लेने में समय लगता ही कितना हैं? पहाडो के पीछे छिप जाने वाले सूर्य का प्रकाश आकाश मे पहले से मौजूद शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की चॉदनी मे बदलने लगा। नगर की दुकानें बढाई जाने लगीं। मेरा काम भी समाप्त हो चुका था।

अन्त में जिस पंसारी की दूकान पर गया, वहॉ चम्बा मिडिल स्कूल के एक मास्टर साहब से भेंट हुई। कम्पनी का एक कैलैंडर उन्हें भेंट करने से मित्रता भी हो गई।

दुकान से मैदान की ओर कदम रखते हुए मास्टर साहब से चम्बे में देखने लायक चीजों के बारे में प्रश्न किया। उत्साह से उन्होंने उत्तर दिया—'हॉ, हॉ, महाराज के महल है, महारज का क्लब है, लाइब्रेरी है, अस्पताल है, डाकखाना है ·· ···।

किसी के रहने का निजी मकान कैसा भी हो, झोंपडा हो या महल, उसे देखने जाना कुछ जचा नही। मैदान मे बसी चम्बा की शेष आबादी से ऊँचाई पर मास्टर साहब ने उंगली से यह सब स्थान दिखा दिये। कुछ दर्शनीयता उनमें जान न पडी।

समीप ही रेलगाड़ी गुज़रने का सा शब्द निरन्तर सुनाई दे रहा था। पूछने पर मास्टर साहब ने हॅस कर बताया—'यह तो नदी की आवाज़ है।'

नदी की ओर उतर गये। नदी बडे-बड़े पत्थरों से टकराती बही चली जा रही थी। किनारे भीमकाय चट्टानें, खडे हाथी के आकार का पडी है। उन्ही पर हम लोग जा बैठे। चॉद ऊपर उठ आया था,

और सम्पूर्ण घाटी पर रुपहला धुंधलापन छा गया। रावी के फेनिल चंचल जल में चन्द्रमा के असंख्य प्रतिबिम्बो से ऐसा जान पडता था मानो दीप-शिखाओ का अथवा शीतल आग का प्रवाह बहा चला जा रहा हो।

बाईं ओर एक छोटी पहाडी की चोटी पर एक बुर्ज सा धुंधली चाँदनी में दिखाई दिया। मास्टर साहब से पूछा—'वह भी चट्टान है क्या? कैसा दिखाई देता है, जैसे बनाया गया हो!'

'नहीं, उसे गुजरी का बुर्ज कहते है।'—मास्टर साहब ने कहा, और मेरा ध्यान दूसरी चोटी पर एक श्वेत विशाल चट्टान और मन्दिर की ओर खीचते हुए बोले—'और यह सतियों का टियाला (चौतरा) है। पिछले समय मे महल के रानियां राजा की मृत्यु के बाद वही सती होती थीं। वहाँ एक छोटा-सा मन्दिर है। अब भी राज की ओर से पुजारी रहता है।'

मेरा ध्यान फिर बुर्ज की ओर गया। पूछा—'गुजरी का बुर्ज कैसा?'

'महाराज के पडदादा के समय महल की एक रानी बदचलन हो गई थी। रानी क्या, किस्सा यो है कि महाराज पांगी से लौट रहे थे। उन्होंने एक जवान, बेहद खूबसूरत गुजरी को देखा। उसकी खूबसूरती का क्या कहना? महाराज के महल मे बडे-बडे राजाओ, महाराजाओ और सरदारो के घर से बासठ रानियां थीं। लेकिन उसके आगे सब फीकी पड गईं। कोई उसकी परछाई को न पहुँच पाती।

'चाँदनी मे फूटी चम्पा की कली-सी, बिलकुल अप्सरा। ऐन चढ़ती उम्र, सोलह-सत्रह बरस की। किस्सा हे कि महाराज ने उसे देखा और महल मे बुलवा लिया। उसके आगे महाराज सब कुछ भूल गए। एक सौ भैसों के दूध का झाग मल कर वह सौ मन फूलो मे बसाये पानी से नहाती थी। लेकिन कुजात कभी छिप नही सकता।

'महाराज बूढे हो गये। पूजा-पाठ में दिन बिताने लगे। एक दिन महाराज अचानक रात मे गुजरी के महल में जा पहुँचे और उसे महल के एक जवान नौकर के साथ पाया। गुजरी ने उसे अपना भाई कहकर महल में नौकर रखवा लिया था।

'महारज ने उस नौकर को उसी समय कत्ल करवा दिया। राज-मजदूर बुलवाये गये, और गुजरी को उसी जगह'—मास्टर ने बुर्जी की ओर संकेत किया—'खडा करवा, मशालों की रोशनी में उसके चारो ओर चूने और पत्थर से बुर्जी चुनवा दी गई। कहते है, ऊपर एक छेद है; उसी से ज्वार की दो रोटियाँ और घडिया भर पानी रस्सी में लटका कर पहुँचा दिया जाता था। मर जाने के बाद भी उसे निकाला नहीं गया।'

'लेकिन यह कैसे मालूम होता था कि वह जिन्दा है या मर गई ?'—मैने प्रश्न किया।

'मालूम क्या होता ! ऐसा ही सुनते है भाई। और उसका मरना जीना क्या ? मर तो गई ही समझो !'—घर लौटने की आवश्यकता बता मास्टर साहब उठ गये।

मुझे हिलते न देख मास्टर साहब ने कहा—'देर तक न बैठियेगा, यहां छल बहुत होता है।'

चौक कर पूछा—'क्या डाकू ? लूट-मार—?'

सिर हिला कर उन्होंने उत्तर दिया—'नही, नही, ऐसा तो यहां कभी सुना भी नही। वह देश की बाते है। बात यह है कि इन्हीं चट्टानों पर शहर के मुर्दे जलाये जाते है। प्रेत लोग यहां रात मे बडे-बडे नाटक करते है। परन्तु शायद आप, शहरो- के लोग तो इन बातो में विश्वास नहीं करते ?'

'ओह !'—कह कर मै बैठा रहा और मास्टर साहब चल दिये।

मुझे कुछ जल्दी न थी। गुरुद्वारे की सूनी अंधेरी कोठरी की अपेक्षा

शीतलता की सिहरन पैदा करती, फर-फराती पहाडी हवा और सामने चांदनी में उद्दाम फेनिल प्रवाह कहीं अधिक सुहावने थे।

बाईं ओर छोटी पहाड़ी की चोटी पर बनी, कोहरे में छिपती जाती बुर्जी की ओर दृष्टि किये, सौ भैंसों के दूध का झाग मल, सौ मन फूलों में बसाये जल से स्नान करने वाली सुन्दरी की बात सोच रहा था। कितना कोमल और कितना विमल रहा होगा उसका रूप ? कितना सुख राजा ने उसके प्रेम मे पाया होगा ? और कितनी दारुण व्यथा उस बुर्ज मे मुद जाने के बाद गुजरी ने पायी होगी ?...... क्या वह रोई-चीखी होगी ? · · कितनी व्यथा से उसके प्राण निकले होगे ? उस पीडा का कोई रूप और सीमा निश्चित न कर पा रहा था।

दृष्टि सतियो के टियाले की ओर गई और आग से जलती रानियो की पीडा का ध्यान आया और सोचा—क्या उस पीडा के कारण वह चीख न उठती होगी ? · ···क्या वह छटपटाती न होगी ? क्या बासठ, बयासी और एक सौ सभी रानियां राजा के प्रेम मे मर जाना ही चाहती थीं ? क्या सबकी यही इच्छा थी ? पैंतालिस-पचास बरस से लेकर सोलह-अठारह बरस की, महल मे केवल बरस भर पहले आई, रानी तक ?

सतियो के टियाले पर सहसा महाराज का शव राजसी ठाठ से सजी विस्तृत अर्थी पर दिखाई दिया।

देखा—महल मे कोहराम मच गया है। सती-यज्ञ की तैयारियां हो रही हैं। सुहाग के चिन्हों और रत्न-आभूषणों से रानियो का पूर्ण श्रृङ्गार हो रहा है। वे सिर धुन-धुन कर, केश नोंच-नोच कर विलाप कर रही हैं। अपने आभूषण उतार-उतार फेंक रही हैं। वह श्रृंगार उनकी मृत्यु की तैयारी है, परन्तु महाराजा बने युवराज और मंत्रियो की आज्ञा है कि सती यज्ञ के लिये सब राजमाताओ का श्रृंगार हो।

देखा—पटरानी राजमाता चेहरे की झुर्रियों मे आँसू भरे, दाँत टूटे

हुये जबड़े फैलाये, केश गूंथती दासियों के हाथ से अपने पके केश बार-बार खींच चीत्कार कर रही है—'हाय मेरे पेट से जनमा बेटा मेरा काल हो रहा है ! हाय मैने तो बीस बरस से उसके पिता को देखा नहीं ! हाय जिन सौतों के महलों में वह रहता था, उन्हें ले जाओ। मै तो कभी की रॉड हो चुकी थी।

पचीस-तीस बरस की दो जवान रानियाँ आँखों में खून भरे, क्रोध से शृंगार करने वाली दासियो को मारने और नोचने के लिये झपट रही है। उनके हाथ-पॉव बॉध कर शृंगार की व्यवस्था की जा रही है। एक अति वृद्धा दासी ने दूसरी दासियो को आज्ञा दी—'प्यास लगने पर रानियों को जल के स्थान पर तीव्र मद पीने को दें।'

कुछ रानियाँ गुमसुम हो घुटनों पर सिर रखे भय से कॉप रही है और एक अठारह वर्ष की अत्यन्त सुन्दर रानी बेबस हो फफक फफक कर रो रही है।

कुछ समय बाद देखा—वे कभी चीत्कार करती है और कभी हॅसती है। उन्हें और मद पिलाया जा रहा है। सबको मद पिलाया जा रहा है। उस उन्मत्त अवस्था में सबका शृंगार हो गया।

देखा—महल के आंगन में डोलियाँ सज रही है। मत्त रानियों को लेकर डोलियाँ चलीं। डोलियों के साथ ढोल, नगाड़े, तासे, तुरही और दूसरे बाजे बजते जा रहे है। मैं सोच रहा हूँ, क्या यह बाजे रानियों के भय के चीत्कार और विलाप की पुकारें दबा देने के लिये है ?

देखा—सतियों के टियाले पर कई कदम लम्बी एक चिता चुनी गई है। रानियों की डोलियाँ चिता के चारों ओर रखी गई है। तलवारें और भाले लिये सशस्त्र योद्धा चिता को घेरे खड़े है। नगाड़े और बाजे जोरो से बज रहे है। रानियों को उठा कर मध्य मै रखी महाराज की अर्थी के चारो ओर बैठाया जा रहा है। उनमे से कोई प्रसन्नता से

खिलखिला रही है, कोई उदास और चुप है, कोई अपने स्वर्गीय महाराज की स्मृति मे आंसू बहा रही है।

देखा—चिता मे आग दे दी गई। अर्थी के चारो ओर बैठी रानियां विचलित हुईं। योद्धा सतर्क हो अपने शस्त्र लिये चिता की ओर लपके! एक चीत्कार, नगाडो और बाजों की आवाजे! आकाश-चूमती लपटें!

एक सिहरन से दृष्टि उस ओर से हटा गुजरी की बुर्जी की ओर कर ली। हृदय धडक रहा था। धुंधली चादनी में बुर्जी कांपती हुई सी दिखाई दी। चांदनी रात का कोहरा उसके चारो ओर लिपटने लगा और वह एक किले या राजमहल की दीवार की भांति विशाल बन गई। दीवार के नीचे भाले तलवार लिये सैनिक पहरा दे रहे थे। दिवार मे एक खिडकी खुली। एक सुन्दरी का मुख, दूध के झाग के सामन शुभ्र और फूल की कोमलता और लुनाई लिये। दिखाई दिया—खिडकी से एक रस्सी लटकी गई। रस्सी के सहारे वह सुन्दरी उतर आई। महल के एक युवक नौकर के गले में बॉह डाल सुन्दरी ने कहा—'प्यारे!'

युवक भय से काप उठा—'महारानी!'—उसने आंखे झुका लीं।

'रानी नही,'—सुन्दरी ने उत्तर दिया—'मै महाराज कि कैदिन हूँ। पेड की डाल से मुझे तोड, चख कर उन्होने एक ओर रख दिया। परन्तु मै भी कुछ हूँ। मेरी भी जरूरतें है। प्यारे, तुम्हारे लिये सब ख़तरे झेलती हूँ।' एक-दूसरे के श्वास मे श्वास लेते वे दोनो काप रहे थे।

गुजरी रानी ने कहा—'प्यारे, जान के मोल यह प्यार है। इसमे दगा नही है। रानी का प्यार नहीं, गुजरी का प्यार है।'

देखा—सहसा लोग दौड पडे। मशालें और हथियारो की चमक। गुजरी रानी के देखते-देखते उसके प्रेमी का सिर धड से अलग हो गया।

गुजरी का दूध के झाग के समान शुभ्र और चम्पा का लावण्य लिये चेहरा सहसा संगमरमर की मूर्ति की तरह निश्चल हो गया। एक डोली में उसे डाल कर लोग ले चले। सतियों की टियाले की ओर नहीं, दूसरी चोटी पर।

मर कर भी वह गिर नहीं पडी। खडी रही, सीधी खडी रही। उसके चारों ओर बडे बडे पत्थर के टुकडे चूने से जोड कर बुर्जी चुन दी गई। बुर्जी के ऊपर छोड दिये गये छेद से एक तीखी चीख निकल पडी, जैसे बिलकुल समीप ही रेल के इंजन के चीख पडने से कान फट से जाते है। शरीर सिहर उठा। परन्तु रेल तो चम्बा से एक सौ मील से अधिक दूर है। सोचा, क्या हो रहा है।

दृष्टि सतियों के टियाले की ओर गई। प्रज्वलित विराट चिता में रानियां बिलख कर, सिर पीटती, चीत्कार करती दिखाई दी। बुर्जी के छेद से इंजन को चीख से निकलता भाप दिखाई दिया, और कान फटे जा रहे थे।

सतियो के टियाले और गुजरी की बुर्जी के बीच महाराज दिखाई दिये, अनेक रानियो से घिरे। कुछ की डोलियाँ सती के टियाले की ओर चल दीं और एक डोली बुर्जी की ओर—

अपना सिर हिला कर सोचा—क्या है यह सब ? ... मास्टर ने कहा था—'यहाँ छल बहुत होता है।'

शरीर मे कमज़ोरी मालूम दी। नदी-पार सियार ऊँचे स्वर में 'हुआं-हुआं' कर रहे थे। शीत की सिहरन अनुभव हुई। परन्तु माथे पर पसीना आ रहा था।

मै उठा और गुरुद्वारे की अंधेरी कोठडी में शरण पाने के लिये लम्बे कदम उठाता चल दिया।

१५

धोबी की हाय—

ज़िले में नये सेशन-जज के आने से शहर के वकीलों में उत्सुकता और आशंका मिली सनसनी सी फैल रही थी। वकालत के पेशे में सफलता के लिये कानून का गहरा ज्ञान तो आवश्यक है ही परन्तु उस ज्ञान का उचित उपयोग कर सकने के लिये जज के स्वभाव और प्रकृति का परिचय भी कम आवश्यक नही। यदि मवक्किलों के मन में भ्रम बैठजाय कि जज साहब अमुक वकील को पसन्द नहीं करते तो बार-एसोसियेशन की पूरी लायब्रेरी रट लेने पर भी वकील साहब की वकालत चमक नहीं सकती। इसलिये के० एस० रंधीरा, आई० सी० एस० के शहर में आने पर वकील लोग अनेक उपायों से उनके पिछले इतिहास, स्वभाव और प्रकृति के परिचय की खोज मे थे।

रंधीरा साहब अपने मौन और एकान्त प्रियता के कारण किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण परन्तु दुर्बोध शिला लेख की भांति निश्चल और जटिल बने थे। वकील लोगो ने सौजन्य के आवेश में जज साहब के अर्दलियो को पान खिलाये, अपने हाथों सिगरेट पेश किये परन्तु कुछ

जान नही पाये। अदालत के समय के पश्चात भी रंधीरा साहब अपने स्टैनो को रोके बैठे रहते। बंगले पर लौटते समय फैसले लिखने के लिये फाईलें साथ ले जाते। सिगार पीते हुये आते। कोर्ट के दरवाज़े पर सिगार मुखसे हट जाता। नाश्ते की छुट्टी के समय फिर सिगार जलता और फिर अदालत समाप्त होने पर वही सिगार, और कुछ नहीं। न क्लब, न कहीं सोसायटी मे आना-जाना। उन्हें कोई कुछ जान पाता तो कैसे? और परिचय करने का यत्न करता तो कहाँ?

मिसेज़ रंधीरा इतनी आत्मतुष्ट और एकांत प्रिय न थीं। कॉलिज में पायी शिक्षा के उपयोग के लिये उन्हें गृहस्थ की सीमा के भीतर पर्याप्त अवसर भी न था। एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से समाज में अपने स्थान और समाज के प्रति कर्तव्य दोनों का ही उन्हें खयाल था। गृहस्थ के कर्तव्य के प्रति भी उपेक्षा न थी। दो बच्चे थे पाली और रजू, वे आया के सुपुर्द थे। रसोई खानसामा के हाथ में और सफाई बैरा के। यह लोग गृहस्थ की देख रेख करते थे और मिसेज़ रंधीरा इन लोगों के काम की।

अक्टूबर के आरम्भ में ही रंधीरा साहब ने चार्ज लिया था। कुछ दिन बाद ही शहर में 'जच्चा-बच्चा की हिफ़ाज़त करनेवाली कमेटी' (मेटर्निटी वेलफेयर) की ओर से एक बच्चों का मेला या प्रदर्शिनी हुई। जनवरी में कुत्तों की प्रदर्शिनी हुई मार्च में फूलों की। मिसेज़ रधीरा ने समाज-हित के इन सभी कामो में सहयोग दिया परन्तु इन कामों के कर्ता-धर्ता और प्रबंधक पहले से मौजूद थे। 'जच्चा-बच्चा की हिफ़ाज़त कमेटी' की प्रधान डिप्टीकमिश्नर साहब की मेम साहबा थीं। कुत्तों की प्रदर्शनी का काम कई वर्ष से असिस्टेंट चीफ सेक्रेटरी की मेम साहबा के हाथ में था और फूलों की प्रदर्शनी लेडी वाजपेयी करवा रही थीं। पर्दा-बाज़ार भी वर्ष में दो बेर लगता था और उसकी कमेटी की प्रधान लेडी करामतुल्ला थीं।

जहाँ चाह वहाँ राह, या लगन होने पर अवसर भी आही जाता है। मिसेज़ रंधीरा ने भी अपने सेवा-भाव के लिये मार्ग ढूंड निकला। उन्होने, एस० पी० सी० ए०, 'सोसायटी फ़ार दी प्रवेंशन आफ क्रुएल्टी टू एनीमल्स' (पशु निर्दयता निवारक समिति) का काम सम्भाल लिया। काम जितना कठिन था उतना ही उसका क्षेत्र भी विस्तृत था और इस कर्तव्य को पूरा कर सकने के लिये अधिकार और सरकार की सहायता की भी आवश्यकता थी।

मिसेज़ रधीरा ने डिप्टी-कमिश्नर से मिल कर करुण शब्दों मे-ऐसे महत्व पूर्ण काम के प्रति सरकार की सहायता के लिये प्रार्थना की। पुलिस के डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट उनके बगले पर उनसे मिलने आये। सप्ताह नहीं बीता था कि शहर के चौराहो पर सफेद कपडे पर लाल अक्षरों में S. P C. A. का पट्टा बांधे पुलिस के सिपाही दिखाई देने लगे। जिला अदालत के वकीलो को इस शुभ कार्य के प्रति प्रेरणा और उत्साह हुआ। संध्या समय फुर्सत होने पर अनेक वकील भी काली अचकन या कोट की आस्तीन पर S. P. C A. का पट्टा बांधे, पुलिस कांस्टेबल साथ लिये चौराहों और सड़को पर इक्के, टांगे के घोड़ो और टट्टुओं की दयनीय अवस्था के प्रति परेशान दिखाई देने लगे। टागे 'इक्के' ठेले और बैलगाडियाँ रोक ली जातीं। जानवरो के साज और तग खुलवा कर जानवरो की पीठ और सीने की जाँच की जाती कि कहीं घाव तो नही है? जानवर बहुत बूढ़े तो नही हैं? वे भूखे तो नही रखे जाते? कई ठेले, इक्के, टांगेवालो और खच्चर-गधो पर लदाई करने वालो का चालान पशुओ के प्रति निर्दयता के अपराध में होने लगा। जो बेचारे बेज़ुबान हैं, उनके प्रति मनुष्य ही दया नहीं करेगा तो वे स्वयम तो कुछ कह नहीं सकते! मिसेज़ रंधीरा के प्रयत्न से डिप्टी कमिश्नर साहब का हुकुम हो गया कि मई-जून के महीनो में दिन के ग्यारह बजे से चार बजे तक भैंसों को ठेलो

में नहीं जोता जा सकता । भगवान की मूक सृष्टि के प्रति न्याय का यह कठिन काम कधो पर ले मिसेज़ रंधीरा को परिश्रम भी कम न करना पडता । दोपहर की चटकती धूप में वे काली ऐनक लगा मोटर में निकलतीं और चौराहो पर देख आतीं कि सिपाही लोग पशुओं के प्रति अन्याय रोकने के लिये धूप में सावधान खड़े है या नही ? सिपाही भी उनकी गाडी और उन्हें पहचान गये थे । उन्हें देखते ही एडी से एडी ठोंक 'सलूट' करते ।

शहर में ऐसे ज़ालिम इक्के वाले भी थे जो बकरी के कद के टट्टू के पीछे किसी तरह दो पहिये बाँध उस पर एक पटडा जमा शरीफ आदमियों को परेशान कर अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिये ही इक्का चलाते थे । उन्हें 'सवारी' के समय और आराम का कुछ भी विचार न था । ऐसे समय में जब चना रुपये का अढ़ाई सेर भी न मिले, यह लोग घोडे को दाने और निहारी की जगह चवन्नी की गोली खिला कर अफ़ीम की पिनक में हरदम सडक पर चलता बनाये रखते है । उनके लिये घोडे जानवर नहीं, केवल इकन्नियां-दुअन्नियां खीचने की मशीन थे ।

मिसेज़ रंधीरा की पशुओं के प्रति करुणा से ऐसे बीसियों पीडित घोड़े हैवानों के हस्पताल में खड़े हरी-हरी घास खाने लगे और इस घास का खर्चा जुर्माने के रूप में उन पापी इक्के वालो को महाजन से कर्जा लेकर जुटाना पडता । स्वयम भूखे रहकर और अपने बाल बच्चों को भूखा देख कर इन दुष्ट इक्केवालों को भगवान की न्याय की शक्ति को स्वीकार करना पडता ।

× × ×

एडवोकेट पी० एन०. खरे की वकालत पिछले सेशनजज साहब के अमल में अच्छी जम गयी थी । उन जज साहब का तबादला होगया । मि० खरे अपने पांव जमाये रखने के लिये चिंतित थे । साथी वकीलो की भांति उन्हें भी रंधीरा साहब के स्वभाव-प्रकृति के परिचय की खोज थी ।

मि० खरे की साली उमा ने उसी वर्ष काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की थी। हवा बदली के लिये वह कुछ समय के लिये बहिन के यहाँ आई हुई थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति और अधिकार के प्रश्न पर जीजा-साली में प्रायः ही बहस नोक-झोक और मज़ाक चलता रहता। मि० खरे की दलीलथी :—स्त्री और पुरुष का सम्बंध खेत और किसान का है। एक के बिना दूसरे का निर्वाह नहीं परन्तु स्थान दोनों का भिन्न-भिन्न है। उमा ऐसी बात से चिढ़ जाती। उसका विश्वास था :—स्त्री के लिये गृहस्थ की चार दीवारी के बाहर भी बहुत कुछ करने को है। प्रमाण के लिये उसने मिसेज रंधीरा का नाम लिया।

उमा के मुख से मिसेज़ रंधीरा का नाम सुन मि० खरे के मस्तिष्क में बिजली सी कौंध गई। जैसे अदालत में बहस के समय अपने हारते हुये मुकद्दमे के समर्थन में कानून का कोई बहुत प्रबल दाँव सूझ जाय! क्षण भर गम्भीर रह, मज़ाक की बहस भूल उन्होंने कहा—'हाँ तो मिसेज़ रंधीरा से मिलती क्यों नहीं? उनके साथ मिल कर काम करो न? .....हम चल कर उनसे तुम्हारा परिचय करा देंगे।' सेशनजज साहब के समीप पहुँचने का इतना सरल उपाय खोज पाने से मि० खरे का मन उत्साहित और प्रफुल्लित हो उठा।

उसी सप्ताह के रविवार की संध्या मि० खरे अपनी साली को मोटर में ले, मिसेज़ रंधीरा से परिचय कराने के लिये सेशन-जज साहब के बंगले पर पहुँचे। बंगले में घुसते ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया.—

जून महीने का सूर्य मध्याकाश से गिर क्षितिज के वृक्षों की चोटियों में उलझ निस्तेज होने लगा था। बंगले के पश्चिम ओर अभी धूप थी परन्तु पूर्व की ओर के लॉन में छाया हो गयी थी। उस छाया में मिसेज़ रंधीरा एक नौकर और एक पुलिस कांस्टेबल की सहायता से एक मरियल टट्टू की सेवा में व्यस्त थी।

कुछ दूरी पर रंधीरा साहब दांतों मे सिगार दबाये इस दृश्य को ध्यान से देख रहे थे। उनके समीप एक सबइंस्पेक्टर निहायत अदब से खडे थे। मि० खरे भी ड्योढ़ी के एक ओर अपनी गाडी खडी कर उमा को ले वहीं एक ओर जा खडे हुये। मिसेज़ रंधीरा ने अपनी इस विचित्र व्यस्तता के लिये सौजन्यता से मुस्करा कर क्षमा चाही और फिर उसी काम में लगी रहीं।

दो बाल्टियों मे 'पोटाशियम-परमेंगनीज' घुला बेगनी रंग का जल भरा था। नौकर मिसेज रंधीरा की हिदायत के अनुसार लोटे भर-भर कर वह दवाई मिला जल टट्टू की छिली और सड़ी हुई पीठ पर छोड रहा था। जल की धारा गिरने से उस घाव से पीप-खून धुल कर बह रही थी। उस पीडा से टट्टू नीचे फैल गये जल से अपने सुम पटकने लगता। उन छींटो से घबराकर मिसेज़ रंधीरा फुर्ती से पीछे हट जाती और फिर करुणा से विवश हो, एक हाथ से साडी सम्भालती, टट्टू की चिकित्सा के लिये आगे बढ, नाक पर रुमाल रख घाव को ध्यान से देखने लगती। गरमी में और इस कठिन परिश्रम से आने वाले पसीने के उपाय के लिये एक ओर स्टूल पर बिजली का पंखा चल रहा था परन्तु मिसेज़ रंधीरा के माथे पर पसीने की बूँदे छलक आई थीं। घाव धुल जाने के बाद उन्होने साहब से राय ली—'मर्कीक्रोम लोशन है, वही लगा दे ?' साहब ने केवल सिर हिलाकर अनुमति देदी।

समझा देने से नौकर भीतर जा सुर्ख दवाई की एक शीशी और मलमल का एक टुकडा ले आया। मिसेज़ रंधीरा ने मलमल का टुकडा मर्कोक्रोम में भिगो, जानवर की उद्दण्डता की चिन्ता न कर स्वयम उसकी पीठ पर फैला दिया।

इसके बाद उन्होंने सब उपस्थित सज्जनो को अंग्रेजी में सुनाया.—लू और धूप में इस ज़रा से जानवर को इक्के में जोत उस पर तीन भारी-

भारी आदमी असबाब सहित बैठे थे और इक्के वाला इसे निर्दयता से पीट रहा था। देखिये तो बेचारा कितना इन्नोसेंट (मासूम) है.... पुअरथिंग (गरीब बेचारा) ! उनके स्वर और चेहरे की रेखाओ में पिघलाहट सी आई—'देखिये बेचारे मूक पशुओ के साथ कितनी क्रूरता और अन्याय होता है ? हम चाहते हैं, ईश्वर हम पर दया करे ! परन्तु ईश्वर हम पर दया कैसे करे, जब हम पशुओ के प्रति इतने क्रूर है ?'

साहब ने संक्षेप में अनुमोदन किया। मि० खरे ने मिसेज़ रंधीरा की बात का और अधिक समर्थन कर करुणा से विगलित स्वर में कहा—'गरीब, मूक पशु अपने प्रति अन्याय के विरोध मे आवाज़ भी तो नहीं उठा सकते ? और यह पशु ही मनुष्यो का पालन करते है। इन गरीबो के प्रति क्रूरता करके मनुष्य अपने आपको इन पशुओ से भी नीचे गिरा देता है। ऐसे मनुष्यो को तो ऐसा दण्ड मिलना चाहिये कि दूसरो को भी नसीहत हो !'

प्रश्न हुआ कि इस टट्टू का अब क्या हो ? आखिर उसे पुलिस कांस्टेबल के हाथ हैवानो के हस्पताल भिजवा दिया गया।

इतनी देर तक दूसरे काम मे व्यस्त रहने के लिये मिसेज रधीरा ने मि० खरे और उमा से फिर क्षमा मांगी और हाथो मे गुलाबी रंग की दवाई के दाग लगे ही वह उनसे बात-चीत करने के लिये बरान्दे में पडी कुर्सियो पर आ बैठीं।

मि० खरे ने उमा का परिचय दिया:—इन्होने इसी वर्ष बनारस यूनिवर्सिटी से एम० ए० की परीक्षा पास की है। इनका विचार अपना कुछ समय सामाजिक-सेवा के लिये देने का है। इसलिये मैने उचित समझा कि यह आपके परामर्ष के अनुसार चलें। शहर भर मे आपके काम को कौन नहीं जानता ? आपका अनुभव, योग्यता और शिक्षा स्त्रियो में तो एक प्रकार से आदर्श ही समझिये।'

'ओह, नॉट एट ऑल !'–संकोच से मिसेज़ रंधीरा ने कोमल विरोध किया––'नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात है ? मै तो जी यह समझती हूँ कि स्त्रियां ज़रा हिम्मत करें तो बहुत कुछ कर सकती हैं।······ समाज की अवस्था ही एक दम बदल जाय !' और अनुमोदन के लिये उन्होने उमा और खरे की ओर देखा।

उमा संकोच के कारण चुप रही परन्तु मि० खरे ने उत्साह से समर्थन किया—'इसमें क्या सन्देह ! स्त्रियां ही तो हमारे समाज के पहिये की धुरी हैं !'

'हॉ तो इट इज़ एस्प्लेंडिड आइडिया ! (आपका विचार बहुत अच्छा है)––'मिसेज रंधीरा ने उमा को सम्बोधन किया––'आप जरूर काम कीजिये। मैं सब तरह से आपकी सहायता करने के लिये तैयार हूँ।······ अब यह काम देखिये न, 'पशुओ के प्रति निर्दयता निवारण का ! पुरुष इसे कभी उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते'—हाथ की उंगलियो के संकेत और मुखपर करुणा के भाव से वे बोलीं—'स्त्रियों का दिल अधिक कोमल होता है न ?'—उन्होंने मि० खरे की ओर देखा—'निस्सन्देह, निस्सन्देह !' खरे ने समर्थन किया।

× × ×

सेशन जज साहब के यहॉ से लौटने पर उमा विशेष प्रसन्न थी। पुरुषों के मुकाबिले मे स्त्रियो की समानता ही नहीं बल्कि श्रेष्टता मिसेज़ रंधीरा के फैसले से प्रमाणित हो चुकी थी। वह चाहती थी जीजा जी अब बहस करें तो खबर लूँ। परन्तु मि० खरे को बहस के लिये अवसर न था। लौट कर कपडे बदलने से पहले ही अपने मकान के सामने ठेकेदार सर्दार बलबीरसिंह के यहॉ जाकर उन्होंने सेशन जज साहब के यहॉ जाने और वहॉ देखी घटना का पूरा विवरण सुनाया और फिर रंधीरा साहब और मिसेज रंधीरा से जो बहुत देर तक उनकी बहस होती रही, उसका भी सब हाल सुनाया। सर्दार साहब

के यहाँ से उठे तो अपने मकान की बगल मे सेक्रेटेरियेट के बडे बाबू मि० ए० हुसैन को भी वह वृत्तान्त सुना आये ।

कुछ समय मे आस-पास समाचार फैल गया। कई लोग पूछने आये कि सेशन जज के यहाँ कैसे गये थे, क्या क्या बात हुई ? मि० खरे बार-बार वह वृत्तान्त और अधिक ब्योरे से सुना रहे थे। बाते समाप्त होने मे ही न आती थीं। भीतर भोजन ठण्डा होने की चिन्ता से उमा की जीजी कुढ़ रही थी और उमा दिल ही दिल घुट रही थी कि आज जीजाजी बहस करें तो बताऊँ।

भीतर से बार-बार संदेश आने पर मि० खरे भोजन के लिये उठने को हुए तो सरदार साहब एक और पडोसी के साथ आ पहुँचे—'मि० खरे कुछ सुना ?··· अरे पडोस में कत्ल होगया !'

सर्दार साहब को कुर्सी देना भूल मि० खरे की आंखे फैली रह गईं—'कहां ?'

'यहीं, यह जो पीछे हमारा अहाता है, उसके साथ ही। किसी इक्केवाले ने अपनी बीवी का सिर फोड दिया। पुलिस उसे गिरफ्तार करके ले गई है।' सर्दार साहब स्वयम ही कुर्सी खींच बैठ गये। ए० हसैन ने पूछा—'कैसे हुआ ? क्या औरत बदचलन थी, या कुछ और मामला था ?'

सर्दार साहब ने बताया—'नहीं शायद वही इक्केवाला था, जिस की घोडी सेशन साहब की मेम साहबा सडक से खुलवा लेगई। पुलिस वाले उसे चालान के लिये चौकी ले गये। जो कुछ वह दिन भर मे कमा पाया था सो पुलिसवालो ने झाड लिया। जो पूजा हुई हो सो अलग। पुलिस चौकी का तो नियम ठहरा कि प्रसाद पाये बिना कोई जा न पाये। · · पाच दस जूते तो लग ही जाते है। बेचारा घोडी की जगह इक्के को तीन मील धूप-लू मे खीचता घर पहुंचा तो बीवी सिर पर सवार होगई। सुनते है, आया तो उससे

लड़ने लगी कि तू घोड़ी कहीं बेच आया। उसने पीने को पानी मांगा तो बोली—'पानी देती है मेरी जूती!'......ताव में आगये मियां। नज़दीक ईंट पड़ी थी, उठाकर चुड़ैल का सिर कूटने लगे और वो मुँह बाये रह गईं। तब मियां भी सिर थामकर बैठ गये। पुलिस आई और हथकड़ी डाल कर ले गई है।...... मियां की बुढ़िया मां है। मियां तो अब क्या बचेंगे! हां बुढ़िया की हांडी-परात बिक जायगी। एक कच्चा मकान है उसका।

आर० डी० मिश्रा मि० खरे के पड़ोस में ही जूनियर वकील है, बोले—'दफ़ा ३०२ तो क्या ३०४ ही लगेगी।'

'यह तो गवाही और पुलिस पर निर्भर करता है—'विचार में डूब दीवार की ओर देखते हुये खरे बोले—'बीबी से कोई शिकायत चली आती हो!......'३०४, ३०७, ३०२ कोई भी दफ़ा लग सकती है।'

मिश्रा ने फिर कहा—'कल्पेब्ल होमीसाइड (दण्डनीय नरहत्या) तो है ही।'

खरे फिर उसी मुद्रा में बोले—'है भी, नहीं भी हो सकती है। प्रोवोकेशन के सर्कमस्टांसिस (उत्तेजना की परिस्थिति) प्रमाणित हो जाने पर साफ़ छूट जाय।'

'हां'—सर्दार साहब ने कहा—'जज पर है भाई। जैसा समझ में आजाय! केस तो सेशन मे रंधीरा साहब के यहाँ ही जायगा।'

'सो तो है।'—सिर हिलाकर मि० खरे ने अनुमोदन किया।

× × ×

शकूर और उसकी घोड़ी के मामले में अदालत का और भगवान का न्याय एक दूसरे का अनुमोदन कर एक साथ चला। शकूर की घोड़ी हैवानों के हस्पताल में हरी घास खाती हुई इलाज कराती रही और शकूर हवालात मे सड़ता रहा। इलाज होने के बाद घोड़ी की खूराक का खर्चा देने का सामर्थ्य शकूर की मां में न था। घोड़ी को सरकार ने

पन्द्रह रुपये में नीलाम कर दिया। मैजिस्ट्रेट ने कच्ची पेशी में पुलिस की गवाही के आधार पर दफा ३०४ लगाकर शकूर का मामला सेशन जज की अदालत के सुपुर्द कर दिया।

शकूर की बुढ़िया माँ ने आकर मि० खरे के पाँव पकड लिये— 'हुजूर वकील साहब मेरे बुढ़ापे की लाठी, मेरे लडके को बचाइये। उम्र भर हुजूर की जूतियाँ उठाऊँगी।'

× × ×

जैसे दूकानदार के लिये लक्ष्मी का आशीर्वाद गाहक की प्रसन्नता से प्राप्त होता है वैसे ही वकील के लिये लक्ष्मी का निवास मवक्किल की कृपा में है। परन्तु जिस गाहक या मवक्किल से लक्ष्मी स्वयम रूठी हो उसकी सेवा दूकान्दार या वकील क्या करे? और फिर जिस मामले में स्वयम् न्याकर्ता की पत्नि की अप्रसन्नता का भय हो! कोई अच्छा समझदार वकील यह मामला हाथ मे लेने को तैय्यार न हो रहा था। परन्तु जब शकूर की बुढ़िया मां नसीरन ने अपना कच्चा मकान मय आधा बीघा जमीन के ६००) में मि० खरे की माता के हाथ बेच कर उनकी फ़ीस पेशगी दे दी तो न्याय की रक्षा अपना कर्तव्य समझ मि० खरे भय का सामना करने के लिये अदालत के अखाडे में खडे हो गये।

चार महीने बाद शकूर का मामला सेशन जज रंधीरा साहब की अदालत मे पेश हुआ। हत्या की घटना को सन्दिग्ध प्रमाणित करने की चेष्टा मि० खरे ने न की। शकूर की माँ का आंख देखा बयान, उसके अँगूठे के निशान सहित पुलिस की गवाही में मौजूद था। सफाई की दलील का आधार अभियुक्त की प्रबल मानसिक उत्तेजना और क्षणिक पागलपन के अतिरिक्त और कुछ न हो सकता था। सेशन जज साहब के मन से शकूर के निर्दय और क्रूर होने की धारणा को दूर करना ही सब से आवश्यक था। अदालत के सामने मि० खरे ने सफाई आरम्भ की :—

'माननीय अदालत इस समय अभियुक्त की स्त्री की हत्या की घटना पर विचार करने के लिये प्रस्तुत है। किसी अन्य घटना का उल्लेख करना इस समय अप्रासंगिक समझा जा सकता है। परन्तु जीवन की घटनायें अदृष्य सूत्रों से गुथी रहती है। एक घटना दूसरी घटना के लिये परिस्थिति बनजाती है। अभियुक्त की स्त्री की हत्या भी एक दूसरी घटना की परिस्थिति में हुई ' ' '–मि० खरे ने अदालत के सम्मुख जून मास की एक प्रचण्ड दोपहर का चित्र खींचा—'हालात से मजबूर अभियुक्त अपनी मृतक पत्नि के दो बच्चों और अपनी बूढ़ी मां का पेट दो मुट्ठी अन्न से भरने के लिये उस लू और धूप में निकला था। अपनी बूढ़ी और जख्मी घोडी का पेट भरने का प्रश्न भी उसके सम्मुख था। अपनी घोडी का पेट भी वह घोडी के सहयोग से मेह-नत किये बिना न भर सकता था। बूढ़ी और जख्मी घोडी को इक्के में जोतना क्रूरता और अपराध है इसमें किसी भी सहृदय, शिक्षित व्यक्ति को सन्देह नहीं हो सकता। परन्तु अभियुक्त अपने ज्ञान की सीमा और संस्कारो के आधार पर अपनी घोडी का उपयोग-अपने परिवार और घोडी का पेट भरने के लिये करना क्रूरता और अपराध न समझ सकता था। अभियुक्त के लिये इस अपराध का दण्ड उसी प्रकार का न्याय था जैसे कोई व्यक्ति पिछले जन्म के अपराध के कारण अंधा या लंगडा पैदा होकर बेबस होजाता है। अभियुक्त की घोडी उससे छिन जाती है।

'अभियुक्त जानवर की जगह जुतकर अपना इक्का तेज़ लू और सख्त धूप में तीन मील खीच ले जाता है। अदालत हस्पताल के रजिस्ट्रो मे इसबात का प्रमाण पा सकती है कि ६ जून की दोपहर को शहर की सडकों पर दो व्यक्ति लू का शिकार हुये है। जिस अवस्था में अभियुक्त को अपना इक्का खीचकर तीन मील जाना पडा, उस पर लू को असर होजाने के सभी कारण मौजूद थे। डाक्टरो का यह निर्विवाद

मत है कि लू का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर ही सबसे प्रबल होता है। अभियुक्त यदि लू के प्रहार से गिर नहीं पड़ा तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसके दिमाग़ पर लू का प्रभाव बिलकुल नहीं हुआ। मस्तिष्क की ऐसी अवस्था में अभियुक्त के प्यास से तड़पते घर लौट कर जल माँगने पर उसकी स्त्री उसका अपमान करती है, उसे गाली देती है—पानी देगी तुम्हे मेरी जूती!' इस बात से अनुमान किया जा सकता है कि अभियुक्त किस वातावरण में रहा है और उसके परिवार के सस्कार क्या थे। ऐसी अवस्था मे अभियुक्त से जो घटना हो जाती है उसमे उसके विचार या इरादे के लिये कोई अवसर नहीं है। वह स्वयम अपने वस में नहीं है। इस घटना का दायित्व अभियुक्त के विचार और इरादे पर नहीं, परिस्थितियो के संयोग पर है। यदि न्याय के क्षेत्र मे उत्तेजना और आकस्मिक घटना का कुछ भी अर्थ है तो इस घटना से अधिक निर्विवाद उदाहरण उत्तेजना और परिस्थिति की विवशता का और नहीं हो सकता। अभियुक्त घटना मे केवल निमित्त मात्र बन गया है। इसके साथ ही वह स्वयम ही इस घटनाचक्र का बेबस शिकार भी हुआ है। वह अपनी स्त्री को खो चुका है। दण्ड तो उसे परिस्थितियो ने दिया है। वह मनुष्य और समाज की व्यवस्था से दया, सहानुभूति और सहायता का अधिकारी है। दफा ३०४ के अनुसार यह घटना दण्डनीय नरहत्या (कल्पेब्ल होमीसाइड) के क्षेत्र मे नहीं आ सकती क्योंकि घटना के समय अभियुक्त अपने आप में न था। हत्या उसके हाथ से हुई है अवश्य परन्तु उसने हत्या की नहीं। अभियुक्त ही नहीं, कोई भी व्यक्ति ऐसी परिस्थितियो मे अपने आप मे नहीं रह सकता था।'

रंधीरा साहब ने संतोष और शान्ति से मि० खरे की करुणा पूर्ण सफाई सुनी। एक सप्ताह बाद उन्होंने अपना लिखा हुआ फैसला दिया—सफाई के योग्य वकील ने दफ़ा ३०४ के अन्तर्गत 'दण्डनीय

'अच्छा वह घोडी ?........ हां, इक्के वाला जिसने अपनी औरत का कत्ल कर दिया था।'—घोडी के प्रसंग से मिसेज रंधीरा के होंठ करुणा से सिकुड गये—'देखिये, ईश्वर इसी प्रकार न्याय करता है। वर्ना बेचारे बेज़ुबानो का क्या है ? समझिये उस घोडी की हाय लग गई उस कमबख्त को।'

'बहुत ठीक कहती है आप!'—मि० खरे ने भी संतोष से समर्थन किया—'अन्याय का दण्ड भगवान देते ही है, चाहे किसी रूप में दें।'